वे दिन.. वे लोग...

(ग्राम्य जीवन पर आधारित रेखाचित्रों का संग्रह)

लेखक

बाल कृष्ण पाण्डेय

प्रकाशक

वासंती-बालकृष्ण सेवा संस्थान

20 बी, किदवई नगर, कानपुर-208011

माँ कस्तूरा

सौ वर्ष पूर्व माँ कस्तूरा का डोला परसरा में उतरा था। दो विश्व-युद्ध की घटनायें उन्होंने सुनी, 1920-21 का असहयोग आन्दोलन, 1930-31 का सत्याग्रह आन्दोलन, 1942 की क्रांति और 1947 की आजादी का बिगुल उन्होंने अपने कानों से सुना।

उन्होंने देखा कि कारिन्दे और जमींदार के सिपाही हौदा और खूंटा गाड़ने में भी नजराना लेने से बाज नहीं आते। लगान न देने पर मुर्गा बनाना, धूप में खड़े होना, मामूली बात थी। चौकीदार के भी रूआब थे। लाल पगड़ी की शान थी। दरोगा के आने की खबर गांव को कंपा देती, मुखिया को चिढ़ाना आग से खेलना था।

सूखा, बाढ़, पाथर, पाला महामारी ऐसी कौन आफत है- जो उन्होंने न

झेली हो। घोर गरीबी, दरिद्रता, तबाही, बेबसी, लाचारी के दिन देखने वाली इस महिला की आस्था, उसका विश्वास, उसकी निष्ठा सचमुच स्पृहणीय है। दिन और रात का जोड़ा लगा रहता। 'कभी तो दिन बहुरेंगे'- यही विश्वास माँ को जीवित रखने के लिए काफी था।

मातृत्व की गरिमा से दीप्त साध्वी नारी का जीवट, उसका अदम्य साहस, कर्तव्य-पालन की वेदी पर तिल-तिल घुटने वाला उसका जीवन, उनकी मूक साधना आज गाँव और परिवार के लिए वरदान बनी हुई है।

पंचायत-योजना प्रारम्भ होने पर वे परसरा की प्रथम साक्षर महिला के रूप में सदस्या मनोनीत हुई। वे असींच गाँव के पिछड़े, गरीब, असहाय किसान परिवार की धैर्यशीला शिक्षित महिला थीं। कक्षा चार पास उस महिला की लिखावट, शब्दों की वर्तनी, भावों की अभिव्यंजना पर आज के हाई स्कूल, इण्टर के छात्र झक मारें।

सुरीले कंठ से संस्कृत के श्लोक, स्त्रोत, ब्रह्मानंद के भजन और रामायण का पाठ करने वाली, सूर्य को अर्ध्य देने वाली, तुलसी पर दीप, नीम पर जल, चौरा पर धूप-अगियारी करने वाली माँ की आस्तिकता में संर्कीणता नहीं, स्वार्थ नहीं- **'सबके भला में अपना भला'** उनका मूल-मंत्र था। सरलता, सात्विकता और निष्कपटता उनकी पूँजी रही।

उनके गाँव में सभायें होतीं, जुलूस उठते, नारे लगते, फूल-माला पहने युवक वन्दिनी माता को आजाद कराने के लिये जेलों में पहुँचते, गाँधी की आँधी में गाँव झूम पड़ा था। कसौटा राज्य की धौंस-धमकी एक कोने में धरी रह जाती, प्रलोभन ठुकरा दिये जाते, थाना-कचहरी, कुर्की, तबाही, पर सोचने की किसे फुर्सत? मातायें अपने बेटों को आशीष देतीं, पत्नियों की गीली पलकों में अटूट विश्वास होता, बहिने मंगल कामना करतीं और बड़े-बूढ़ों की चरणरज उनकी रक्षा का कवच बनती।

परसरा के नवयुवकों ने स्वतंत्रता-संग्राम के सैनिकों में अपना गौरवपूर्ण स्थान बना लिया। माँ गुनगुना उठती- **'पराधीन सपनेहुँ सुख नाही'**

और सिताबा बुआ, मेड़ा दीदी, बदामा आजी, ओझाइन अइया, शुकलाइन भौजी, सधुआइन, कल्लो, रामकली, सोनकली आदि बहनों की गोष्ठी में अनलिखे प्रस्ताव पास होते रहते।

दरवाजे की लंगड़ी नीम पर झूला पड़ता, कजरी होती, सावन के दर्दीले-मीठे गीतों से टोला गूँज उठता।

*   *   *

आँगन में बारात जम रही है और माँ के कण्ठ से निकली राम-कलेवा, गारी और जेवनार की लंबी सूची भोजन के स्वाद को बढ़ा रही है। भदेस गालियों से चिढ़ने वाली माँ ने गाँव में विवाह-गालियों की स्वस्थ परम्परा बनाए रखने में जी-तोड़ प्रयास किया।

संतानों को योग्य बनाना उनका व्रत था। ईमानदारी, श्रम की कमाई खाने की सम्मति देने वाली माँ के पुत्र शिक्षक हैं, सैनिक हैं और धरती माता के पुजारी। उनके पौत्र-पौत्रियों ने बी.ए., एम.ए. उपाधियाँ प्राप्त कर दादी की आयु बढ़ाने का उपक्रम किया।

गाँव के लुलई, जोखई, रामदास चमार, मूड़ी कोल, काली पासी आदि की बेबसी की जानकार माँ को प्रसन्नता है- आज कमजोरों की ओर सरकार की निगाह तो पड़ी। ऋण की चपेट में बुद्धी अहीर, तिनगू, पचई पासी आदि उजड़ते घरों को उन्होंने देखा है। उनकी तमन्ना है- गाँव खुशहाल रहे, रोजी-रोजगार भरपूर मिले, छीना-झपटी, चोरी-चमारी से गाँव अछूता रहे। लोग जियें और दूसरों को जीने दें।

गाँव की संस्कृति जिस सास की रग-रग में समाई हो, उसे वह बहू कैसे पुसावे- जो उनके बेटे को उनसे और उनके गाँव से दूर शहर की चमक में खींच ले जाकर यंत्रवत नीरस बना देने को ही अपना लक्ष्य बनावे।

उन्होंने जिस जीवन को जिया है, जो साधना की है, जिस आशा के संबल से अनेक झंझावातों के बीच अपनी नाव खेयी है, उसकी एक कहानी है, उसमें दर्द एवम् पीड़ा है, कचोट है, और है सदियों से चली आई नारी की

सिसकन।

गरीबी से जूझते परिवार की संरक्षिका ने आँसू के घूंट पीकर, भूखे तन, जाड़े की ठिठुरन सहकर अपने जिगर के टुकड़ों को पाला और बड़ा किया। उसकी ममता की पुचकार से, उसके कोमल करों का स्पर्श पा, उसके आंचल का सहारा ले बच्चे विकसित होते रहे।

घर के एक कोने पर प्याल(धान का तृण) से बिछी साथरी पर बच्चे लुढ़क जाते, एक-दूसरे की गर्म सांस सहारा देती, घुटने समेटे, फटे-चिथड़े, ओढ़े-लपेटे रात कट जाती किस्से और कहानियों के बीच।

माँ डबडबाई आँखों से राजा हरिशचन्द्र के रानी से मरघट का टैक्स वसूल करने का बखान करती, घायल श्रवण राजा दशरथ के हाथ अपने बूढ़े माँ-बाप के पास पानी भेजता, कृष्ण, सुदामा के पैरों को धोने और उनकी फटी बिवाइयों को देख रोते, नल-दमयंती के वन में भटकने आदि की कथा होती। 'एक थे राजा-एक थी रानी' से शुरू होती कहानी 'जैसे उनके दिन बीते - वैसे सबके दिन बीतें' पर खत्म होती। पहेली बुझाई जाती, गिनती, पहाड़ा होते, श्लोक, कविता भी और उस गरीबी को, अभाव को एक दिलेरी के साथ काटने का संकल्प मिलता। एक आस्था-एक विश्वास पूरे परिवार पर कवच की भांति छाया रहता।

कहने के नाम पर लोहे का छल्ला भी नहीं, केवल गिलट के गुड़हरे और चार चमक चूड़ियों पर नाज रहता। दो पैसा प्रति रूपया ब्याज पर हाथ का चुरूवा प्रायः बुइया सुनारिन के यहाँ गिरोह धरा रहता। पास के गाँव में बच्चों को पढ़ा कर उनके बेटे ने तीन रूपया दो आना देकर माँ का चुरूवा छुड़ा दिया। उनकी यह खुशी किसी जागीर पाने से कम न थी।

गहने पर जान देने वाली नारियों से कहीं ऊपर यह माँ, भाई-भौजाई के भेजे धन से भी पहनने-ओढ़ने का शौक छोड़, गाय-भैंस खरीद, बच्चों को दूध-माठा के लिये न तरसना पड़े, इसकी जुगत करती। दाना और पैसा की पीड़ा रखने वाली माँ ने बड़े जतन से गृहस्थी संची, बेटों के ब्याह रचाये, लड़कियों के हाथ पीले किये।

वृद्धा माँ का लड़कपन-जवानी सब इसी घर में खप गया। श्रम उनसे पनाह मांगता, भिनसारे जाँत पर बैठ जाती, गीतों के साथ आटा का ढ़ेर लग जाता। ओखल, मूसल, चूल्हा, चक्की, सूप, चलनी, बढ़ने उनके दायें-बायें रहती। गृहस्थी के कार्यों में ही वे एक तृप्ति और सुख का बोध करतीं, बैठना उन्हें पुसाता नहीं। महुए से अनेक व्यंजन, अलसी का लाटा और बाजरे की ढूंढी बनाना उन्हें खूब भाता।

ऋतुयें बदलती रहीं, साल सरकते रहें, गाँव की रंगत, रहन-सहन सभी में तो बदलाव होता आया, गेहूँ की नरम रोटी को तरसने वाले घर की बखारें भरी रहतीं। उनके भगत का पंपिग-सेट धरती को हरा-भरा बनाने में चौकस रहता। बेटे हैं, बहुयें हैं, नाती-पोते हैं। वंशवृक्ष लहलहा रहा है, पर उनके मन की भड़ास, उनकी कचोट, उनका दर्द कौन समझे? वे कुछ खोई सी, अनमनी सी घर की दीवारों को टटोलती रहती। उनके मन को सहलाने की, उनके रीते मन को भरने की आज की नई-नवेलियों को फुर्सत कहाँ ?

दीवारें हँसती थीं, नरदे में भी चमक थी, आँगन में तुलसी गमका करती थी, लिपी-पुती देहरी सदा लकदक बनी रहती, घर ऐसा, राह चलता पानी पिये और आशीष देता जाये। बातों की छौंक बघारने वाली बहुओं को इन सबसे क्या लेना-देना? इनके अपने अरमान हैं, अपने हिसाब हैं, गृहस्थी जमाने, बरक्कत कायम रखने का चाव कहाँ ?

राधे और ननकू की माई मुहाना, फूफू जनक दुलारी, गेंदा, रजवंता और कुइसा अब कहाँ है? ऐसा लगता है बूढ़ी माँ किसी-बीराने देश आ पहुंची है, अपना कहने वाला कोंसो दूर है। टोले की ननकी भौजी के साथ अबीर-रंग खेलने वाले पंडित काका, बिरजू काका, बलदेव काका आदि भी चलते बने।

माँ की साध थी-घर में गेंहूँ हो, चीनी, घी हो, वे अपने बेटों को अपने हाथों बना-बनाकर चीजें खिलावें, उनको थाली पर जीभ चटकारते देख आँखों को तृप्त करें। उन्होंने घुरसी पर ताजी हथपोई सेंककर, घी के लोदे चुपड़कर जिस बेटे को पहलवान बनाया, उसी को अपने से खिंचा पाकर उनका दिल रो पड़ता है। जिस बेटे को नमकीन गीला भात खिलाकर अपनी पुचकार से मोटा-

ताजा किया, उसे भी उनके पास बैठने की फुर्सत कहाँ?

सबकी दुनिया बसाने वाली माँ का संसार सूना था। बेटियों के अपने परिवार हैं और बेटों की भी अपनी समस्यायें हैं। पूरे घर को एक करने वाली का संसार कितना सिमट गया है। बस, एक चारपाई, उसी में दो-चार गूदड़, अपना कहने को एक लोटा भी तो उनके पास नहीं है।

घर के पुरखा, जिन्होंने बांह गही थी, वे भगवान के प्यारे हो गए। देह की वह ताकत कहाँ? मुँह अधियारें से रात तक फिरंगी की तरह नाचने वाली बूढ़ी माँ अपनी ज्योति-हीन आँखों से किसी सुदूर लोक की झलक पाने की लालसा में सुध-बुध सी खोई घर की दहलीज पर बैठी रहती।❑

ऊधो जी

पैर में पुरानी चमरौंधा पनही, घुटने ऊपर धोती, सिर पर मारकीन का मुरेठा, दोहरी बण्डी (बनियाइन) पहने, हाथ में हसिया पकड़े भैंस के लिए जार (कटीली हरी झाड़ी) का बोझा पटक कर, बच्चों को सोंधी महक वाले पियर रंग के पेहटा (छोटी फूट) मान-मनौवल के साथ देने वाले कसरती ऊधो का शूमार आज गांव के बड़े-बूढ़ों में है।

मस्ती और मौज उन्हें घूंटी में मिली थी। बालपन में उन्होंने छक कर दूध पिया था, मौसी की जमीदारी में रहकर उन्होंने प्यारे भाई से ज्यादा दूध डकारा था। सहदेव अहीर दोहनी (दूध पात्र) सामने रख देते, प्यारे भिन्न- भिन्न करते, पर इन्हें दोहनी खाली करने में देर न लगती।

देह बनाने का उन्हें नशा था, दौड़ में उन्हें पाना आसान नहीं था, लम्बे

कान हिलाने और हवा से बातें करने वाले को गाँव ‘खरहा‘ कहने से भला क्यों चूके? ललका लंगोट कंधे पर रखे, अखाड़े की माटी पोतने वाले ऊधों के लिए पचास किलो तौल की चकिया चार किलोमीटर लाद ले जाना, भारी भरकम नाल (बजनी पत्थर) दाँत से उठा लेने की बाजी जीतना, अपने से दूने तिगुने को भी ताल ठोक देना, शेखीबाजों को मटियार की मिट्टी चटा देना उनके लिए साधारण बात थी।

दरवाजे की गिरती लंगड नीम को उन्होंने और रामजानकी ने अपने जोर से खड़ा किया था, बड़े भरकम छप्परों को चढ़ाने में उनकी ललकार ही काम देती थी।

देह को रगड़-रगड़ कर नहाने वाले और कपड़े को फींचकर धोने वाले ऊधो का साबुन से क्या प्रयोजन? अलबत्ता बरात की सुपाड़ी पाने पर वे कपड़ों को रेहिया (सज्जी मिट्टी) लेते थे। बरात में उनके लकदक कपड़े जोधपुरी साफा बांधकर, ताक-ताक बीड़ा (आम के पत्तों से निर्मित) मारने का शौक था, बैल बेंचकर बारात का साज बनाने की चर्चा आज भी लोगों की जबान पर है।

बाप का सुख उन्होंने जाना ही नहीं। वकील चाचा इन पर जान देते थे। उनके दुलार ने उन्हें आसमान पर चढ़ा दिया। तीतर (एक पक्षी) चुगाने, अखाड़े में हाजरी देने वाले को मदरसा में पाटी पोतना, खड़िया रंगना कैसे पुसाता? मुंशी जी की छड़ी के डर से कुठले में छिपने वाले ऊधो ने कागजों पर हमेशा बायें अंगूठे का ही सहारा लिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी रचित निम्न श्लोक आप पर पूरी तरह फबता है।

‘किं विद्यया? किं तब कर्षणेन?

व्यापार वृत्या किमु व्यापि भृत्या।

जपत्य हो सं श्वसुराल पस्ते

त्वं कल्पवक्षीयसि यं सदैव।

‘‘आपको विद्या से क्या? किसानी से क्या? व्यापार से क्या? नौकरी

चाकरी से भी क्या? आप क्यों इनका आश्रय लेने लगे, बनी रहे आपकी ससुराल जिसको आप कल्पवृक्ष समझते हैं-जहाँ से कुछ न कुछ सदैव लेते ही रहते हैं।''

पूरब की ओर मुख किये, चरही पर बैठे, विचार मग्न ऊधो बेटे, बेटी, नाती, पोतों के होते हुए भी गुहस्थी से निर्लिप्त रहे। गांव की तिकड़म..., अभाग्य का फेर..., घर की भूख..., ऋण का चक्कर... खेती की जमीन महाजनों के पास पहुँच गई। फाका के दिनों में भी उनके चेहरे से बेचैनी व लाचारी कोई भांप नहीं सका।

ऊधो जी का बचकाना स्वभाव उनकी पूँजी बन गया, बच्चों के साथ हँसने-हँसाने वाले को दुनिया की बदलती तस्वीर से क्या लेना देना? गम्भीर विषयों पर मगज खपाने की अपेक्षा हलकी-फुलकी बातों पर कहकहे लगा लेना तन्दुरूस्ती के हक में अच्छा है।

चारपाई से कितने भिनसारे (प्रातः) उठकर शौच क्रिया से निपटते थे... यह कोई नही जान सका। पौ फटते-फटते कटिया (चारा) का ढेर लगा देते थे, मशीन के साँचे में ढले-बारीक कि भूखा ललचा उठे। ...उनके हाथ के चारा से तृप्त जानवर मजाल है कि दूसरे की चरनी झांक सके, भैंस उनके खूंटे का श्रृंगार रही, वह उनकी अटकी गाड़ी संभालती, आड़े वक्त सहारा लगाती, अकेले उसका मट्ठा पीकर ही वे दिन भर डकरते रहते।

कस्बे की रामलीला में जरूर पहुँचते। शारदा मास्टर के दशरथ - विलाप पर आंसू बहाते..., तो मोटे राजा के लतीफे पर लोट-पोट हो जाते...। कुआर के दिन थाली भर भात (चावल) का भोग लगाकर मोट की लाठी टेक कर बाजार में खड़े हो जाते, रात भीजते घर लौटते और उसी दम बैलों को चराने निकल जाते।

मशक्कत उनका लोहा मानती पर... भारत के असींच प्रदेश के साधन विहीन किसान की बिसात क्या...? स्त्री बच्चों की भूख, जमींदार का तगादा, महाजनों की धौंस उन्हें झकझोर देती... पर वे उस सांचे में ढ़ले थे, उन पर उस मस्ती और अल्हड़पन का खुमार था जो उन्हें गिरने नहीं देता।

नालिशे होतीं, बेदखली के फरमान आते, गांव घर छोड़ मजदूरी करने की नौबत आती, पर एक आस्था, एक विश्वास, एक भरोसा, एक आशा उन झंझावातों को झेलने की शक्ति देता। अभाव-कष्ट-दैन्य के बीच भी फगुआ उन्हें गुदगुदा देता, चौताल गुनगुनाने लगते-**'वन मुरली बजावत श्याम रहा नहि जाई....।'**

नाच-स्वांग, नौटंकी देखने अपने ब्रह्मा, सुदामा, महावीर, बद्री आदि साथियों के साथ रातों रात चार कोस मंझा जाने में आलस्य न करते।

बरगद वाले हनुमान जी और पीपल पर नियमित एक-एक लोटा जल चढ़ाते। शनिवार को गुड़-घी गूगुल का होम करने वाले ऊधो ने अपने गिरे दिनों को बहादुरी के साथ कुशल खिलाड़ी की भाँति झेला।

*　　　*　　　*

घूरे के दिन भी बहुरते हैं, समय ने करवट ली... बेटों ने धरती संभाली, खेत के कोने-कोने में जल पहुँचाया, समय की नाड़ी को पकड़ विकास के चरण चूमें प्रगति की राह पकड़ी, अवसर से लाभ उठाया।

ऊधो का बुढ़ापा तर गया...। अंत भला सो सब भला... सुख की सांस ली..., घर सिमार एक करने वाले को गठिया ने बैठा दिया। जिन दाँतों से खड़ी सुपारी, हनुमान छाप बादाम फोडने की जुर्रत थी..., अब दाल में भीगी रोटी कुचलने में भी हिचकने लगे। सथरी में लिपटी गुड़ की भेली (डली) कोई न ले जाए..., जतन से रखे नोट व रेजगारी पर निगाह न पड़ जाए... बस यही चिन्ता रहती है। ❑

बूढ़ा पीपल

सदियां बीत गई..., अब इस गांव और टोले से अपनी ममता तोड़ किसी भी क्षण धरती पर लुढ़क सकता हूँ। गांव के उत्तरी निकास का शानदार पहरूवा अब चलाचली के फेर में हैं।

नन्हें से पौधे के रूप में मेरे अस्तित्व पर निहाल हो जाने वाले 'मतोली बाबा' के यशस्वी करो का स्पर्श पा मैं दिन दूनी, रात चौगुनी गति करता रहा। बकरियाँ मुझे चरतीं, ऊंट अपने जबड़े में समेट लेना चाहते, आंधियां झकझोर देतीं, पर... धन्य है बाबा का धैर्य और साहस, जिसने मुझे जीवित रखने के लिए क्या नहीं किया?

एक लोटा जल, हर शनि को दीप-दान और गुगुल, घी, गुड़ का होम दे अपनी श्रद्धा व्यक्त करने वाले परिवार की छठी पीढ़ी को फलता-फूलता देख मैं

पुलकित हूँ। दो सौ वर्षों का इतिहास समेटे इस समय मैं जर्जर अवस्था में अपने दिन गिन रहा हूँ। अब तो पूरा सिमार (मैदान) भांय-भांय कर रहा है। अनेकों नीम, इमली, कैथा, महुआ, बेल, गूलर और छिउर आदि वृक्षों का पड़ोस पा मैं फूला नहीं समाता था। पुत्र से भी बढ़कर तरू को पालने वाली मनोवृत्ति कहां चली गई? मेरे कोमल, हरे, चमकीले पत्तों को बैल बना हल जोतने को खेल खेलने वालों को मेरे दुर्दिन पर, उफ! तनिक भी तरस नहीं?

मेरी लंबी बाहों से गड़ही पर कूंद कर तैरने वाले, डुबकी लगाने वाले, थाह पाने वाले कतरा कर निकल जाते हैं। गड़रिये अपनी भेड़ों के झुण्ड को खड़ा कर मेरे कोमल पत्तों से तृप्त करते, चारे के अकाल में मेरी पत्तियां सहारा देतीं। असंख्य पक्षियों का आश्रयदाता आज ठूठं मात्र रह गया है। बैशाख-जेठ की चिलचिलाती धूप में मेरे तले बैठ टोले के बैल पागुर करते, लड़के गुल्ली-डण्डा खेलते, बड़ों की पंचायत होती, आद्रा नक्षत्र की हरहराती हवा एक मस्ती ला देती। मेरे जोश खरोश का क्या पूछना? गड़ही का पीपल बाढ़ों के थपेड़े खाता... पर उसका कुछ न बिगड़ता।

अब सब सपना हो गया। संसार बढ़ा, दुनिया बदली पर, गांव क्या था... अब क्या है... इसे सोच दिल रो पडता है। पढ़े-लिखे समझदार लोग शहरों को खिसक गए। साँवा-कोदों मिट्टी के बरतनों में भले ही राधें जाते हों... तन पर साबुत कपड़ा भले ही न रहा हो..., पर जो मिठास पूरे गांव में बिखरी थी, वह अब छू-मन्तर हो गयी है। गांव का भाई-चारा, गांव की रौनक, गांव की बहबूदी, गांव की सुघड़ता जाती रही। सामने के चबूतरे पर ढुढेरी के दिन पूरा गांव जिस उल्लास से ठण्डाई छानता था वह दम-खम कहां गया? फागुन-चैत की मस्ती, अषाढ़-सावन की ताजगी, कुआर-कार्तिक की खुमारी अब कहां है? मनहूसियत ने गांव को डस लिया है। सबकी खिचड़ी अलग पकती है। 'गांव एक है' का नारा थोथा पड़ गया है। दुःख-सुख में एक साथ टूट पड़ने वाले गांव को छप्पर उठाने के लिए मुंह जोहना पड़ता है।

होली की आग लगी नहीं कि गांव हा-हा-हू-हू के लिये जुट पड़ता, बरसों का मैल धुल जाता, काई कुरच-कुरच कर निकल जाती और अर-र-रर

कबीर के साथ उड़ती अबीर और रंग भरी पिचकारी सबको प्रेम में सराबोर कर देती। श्रावणी में अखाड़े की मिट्टी लपेटे जवानों की ऐंठ देखते ही बनती, गुड़ियों की तरह सजी गांव की ललनायें कोमल कण्ठों से कजरी की तान टेरतीं, झूलों में गजब के पैग मारे जाते, झमाझम बरसते मेह में आल्हा के स्वर गूंज उठते, कुआर की ज्योत्सना में सांझी-ढेढ़िया के गीत सुन तबियत भर जाती। अब भी ऋतुयें आती हैं, त्योहार होते हैं, पर सब कुछ यंत्रवत, उमंग और उल्लास की मणि छिन सी गई। नीम की छाया में हुक्का गुड़गुड़ाता किसान चरनी में बैलों की जोड़ी को मुंह बोर सानी खाते जिस पुलक का अनुभव करता, घर की पुरखिन सांझ-सबेरे आंगन की तुलसी चौरे पर माथा टेक जो कृतज्ञता प्रकट करती... वह अब कहाँ? मुंह अंधियारे गड़ासे चटकने लगती थीं। पौ फटते-फटते साँचे में ढले चारे (कुट्टी) का ढ़ेर लग जाता, चक्की (जाँत) के दर्द भरे गीतों को सुन चौपाल पर लेटे मेहमान की आँखें और मन एक साथ खुल जाते, पांठा (एक प्रकार की खड़ाऊ) पहन खरिका से दोहनी भर कर लाने आदि पर पानी सा पड़ गया।

आज दिमाग की करामात भले ही हो... पर हृदय नहीं दीखता, बाहर मुस्कान है पर दिल में फफोले हैं, बाहर व्यवहार है, राम जुहार है, पर भीतर कसक है, मैल है और काई जमा है।

चौपाले सूनी हैं, अलाव फीके हैं, चबूतरे पर लगने वाला दरबार, पनघट की ठिठोली, खेत-खलिहान का परिहास, बगीचे की धमा-चौकड़ी, डाड़-मेड़ की पूछा-ताछी समाप्त हो गई। सभ्यता के नए अंकुर पनप रहे हैं। वीडियो, टीवी, मारूति, जींस और बूटों के बीच वह आत्मीयता सौहार्द मिट गया, जिसके लिये देवता तक यहां आने को तरसते थे।

ईर्ष्या की खाई एक टोले से दूसरे टोले को, एक घर से दूसरे से, भाई को भाई से अलग किये हुए है। मनुष्य की मर्यादा का मूल्य घट गया है। अन्याय, उत्पीड़न, उच्छृंखलता, भ्रष्टाचार अपनी सीमा लांघ रहा है। सामुदायिकता लोप हो रही है, व्यक्तिवाद पनप रहा है। बूढ़ों का दिल घुट रहा है, युवा सिकुड़ रहा है, बालक सिसक रहा है, एक अनोखी अदा से गांव थिरक रहा है।

मै जर्जर सूखा ठूंठ अंतिम सासें ले रहा हूं। मेरी दुआएं गांव के साथ हैं। मेरा अवसान गांव के युवकों, आने वाली पीढ़ी के लिए एक चुनौती है। वे अपने गांव को सरस, सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए क्या करते हैं? गांव की बहबूदी जिन हाथों जा रही है-वे कहीं लरज तो नहीं रहें हैं? गांव की ममता जिन हाथों सौंपी जा रही है, वे कहीं अपने को अशक्त तो नही पा रहे है?

* * *

मैं अनेक आकांक्षाओं अभिलाषाओं को समेटे गांव के अनेक दर्द और पीड़ा को बटोरे जा रहा हूं। मैं अकेला कब तक टिकूं? देखते-देखते गांव का चप्पा-चप्पा जुत गया, ढ़ोर खड़े होने को तरस गए, बाग उजड़ गया, बबूल उगाने को फुर्सत नहीं है, गोबर जल रहा है, खाद का सोना नष्ट हो रहा है। गांव की सांस्कृतिक चेतना नष्ट न होने पावे, उसकी सुघड़ता और मिठास बरकरार रहे इसका व्रत लेने वाले युवकों को अपना आशीष देते हुए इस प्यारे गांव से, अपनी पड़ोसिन गड़ही से, अपने टोले से, अपने संरक्षक परिवार से जुदा हो रहा हूं।❑

कवि जी

गौर वर्ण, लम्बी इकहरी देह, विहंसता चेहरा, तीसों दिन बबुआ बने कवि की महक जवार के किस कोने में नहीं गमक रही है? सरलता भावुकता मिलन-सारिता आपको विरासत में मिली है। दरबार और रईसों के साथ ने स्वभाव को राजसी बना दिया है।

आपके गीतों में दर्द है... कचोट है... अभावों की चुभन है... बढ़ते परिवार के प्रति जिम्मेदारी न निभा सकने की कुण्ठा है। आपकी बोली में एक मिठास, शालीनता, शिष्टता और दरबारी टोन समाई रहती है।

आप सबके हैं...। दादा, भइया, अम्मा, बाबा, मुन्ना कहने वाले पंडित जी अपने भोले के साथ सब जगह हाजिर है। सबके दुःख सुख में शामिल है। विद्यार्थियों का प्यार और आदर उन्हें मिला है। वे सबकी बढ़ती के साथी हैं...,

सबका मंगल उनकी कामना है। उनका परिचय क्षेत्र व्यापक है। सबके हृदय में बैठने की कला से भिज्ञ है... उनका मोहक सुरूचिपूर्ण स्वभाव सबको भा जाता है।

पत्रकारिता उनकी 'हॉबी' है। पिछड़े क्षेत्र की समस्याओं को मुखरित करने में उन्हें कमाल है। गूँगे इलाके की वाणी के रूप में ख्याति प्राप्त इस कवि का सत्संग आपको विभोर कर देगा।

कौलीन्यता के गर्व से दीप्त कवि के प्रेम और स्नेह की परिधि व्यापक है। शबरी के राम जिसका आदर्श है... वह खान-पान में एक मात्र प्रेम की चाशनी देखता है। स्वास्थ के प्रति सतत् जागरूक कवि नियम बद्धता में बेजोड़ है। जाड़े के समय शौच के लिए चार बजे जंगल निकल जावेंगे... दूर बहुत दूर। वही समय है कवि के चिन्तन का...।

बाप ने जिस दिन दम तोड़ा है उस दिन की तो नहीं कह सकता... अन्यथा उनकी दाढ़ी रोज बनती है। धरती पर नंगे पैर उन्हें किसी ने देखा नहीं। जूता, खड़ाऊँ बारी बारी से उनके पैरों की शोभा बढ़ाते हैं। भोजन के बाद सिर पर कंघी फेरना, साठ मिनट बाद पानी पीना आदि अनेक छोटे मोटे स्वास्थ विषयक नियम उनके जीवन में बुरी तरह घुल गए हैं... जिससे कवि को त्राण नहीं।

बाजार के बनियाँ जानते हैं कि कवि जी इलायची के सिवा और कभी कुछ नहीं खरीदते। इलायची का एक -एक दाना वे पूरी मंडली में नजाकत से पेश करेंगे। मित्रों के साथ बाहर जाने पर पहले आप चढ़ें, पहले आप में, 'ट्रेन' और 'बस' छोड़ देना सामान्य बात है। उनका निर्माल्य निकेतन मौसमी पुष्पों से लहराता है। और कुछ नहीं तो विदाई में हँसते हुए आपको खिला हुआ फूल तो थमा ही देंगे।

नाराजगी हो या स्नेह, तुक भिड़ाते हुये धारा प्रवाह एक सरीखे अलंकारिक शब्दों के प्रयोग में आपको कमाल है, आपके संबोधन में एक ललक - मिठास और आत्मीयता समाई रहती है...।

मानस आपका प्रिय ग्रंथ है..., 'श्रीराम शरणं प्रपद्ये' आपका मोटो है..., हरि इच्छा बलीयसी पर आस्था है। भावुकता आपकी पूंजी है। कविता व्यवसाय नहीं हृदय की पुकार है। आप ठगे भी गये हैं... अपने प्राप्य से आपको दूर भी रखा गया है। भाग्य और भगवान के नाम पर आप सब भुगतते रहे।

व्यक्तिगत जीवन के अभावों दर्दों को सहलाने में कवि का सार्वजनिक रूप राम बाण का काम करता है। सबके बीच अपने को भूलने की क्षमता संजोए कवि को परखनें के लिए स्निग्ध दृष्टि चाहिये। उनके 'हम दृढ़ ब्रती हमारा तिरंगा न झुकेगा' दर्जनों गीत बच्चों को कण्ठस्थ हैं। उस मौन साधक को अपनी रचनाओं को एकत्र करने, उन्हें क्रमवार छांटने और किसी प्रकाशक को सौंपने का अवकाश कहां है?

भाई हैं, भतीजे है, गांव है, घर है, खेत हैं, ससुराल है, पत्नी है, पुत्र है, बिटिया है, दामाद है, बन्धु-बान्धव, नाते, रिश्तों से घिरे हैं, फिर भी ऐसा लगता है... कवि अकेला है, निर्मम हैं, नीरस हैं, विदेह है, संसार में रहते हुए भी उससे दूर है। उसे शांति नहीं... तृप्ति नहीं तभी एक अतृप्त लालसा संजोये वह दूर क्षितिज के पार अपने सपनों की दुनिया में खोया रहता है। जहाँ अनुभूतियां शून्य हो जाती है और आवश्यक्ताएँ सूख जाती है।

* * *

गांव के बगीचे में, तालाब के किनारे चाँदनी रात में एकान्त में उसने घंटों गुजारे हैं, गुनगुनाया है। अपने से बात की है। क - ख और गिनती से लेकर तुलसी भूषण की शैली रटाने वाले पंड़ित जी के सैंकड़ों शिष्य देश भर में छिटके हैं। दुर्वासा और सुतीक्ष्ण की कोटि के अपने पंड़ितजी को वे किसी कीमत पर भूल नहीं सकते हैं। छात्रों से उनका लगाव टूटता नहीं है। वे सबके तिलक और विवाह की पूड़ी खाने का भी समय निकाल लेते हैं। सैंकड़ों से उनका साबका पड़ता है।

महल और झोपड़ी, नेता और महात्मा, राजा और प्रजा मूर्ख और पंड़ित सबकी प्रवृत्तियों से वाकिफ इस अलबेले कवि की धाक जमी है। तुनक मिजाज कवि को गरम और ठंड़ा होने में देर नहीं लगती।

उनकी व्यस्तता पर तरस आता है...। कहां जाना है... कहां पहुँच जायें...। क्या करना है... क्या कर गुजरे..., क्या लिखना है... क्या लिख मारें..., यह ब्रह्मा भी नहीं जानते।

कसौटी की हर एक पगडंडी का जानकार... इसने कितनी पद यात्रा की है इसका लेखा आसान नहीं। शहर का चक्कर लगाए बिना इन्हें चैन नहीं। शहर जाकर बिना सिनेमा देखे लौटने वालों पर आपने सदैव तरस खाया है।

सुंदरता और सुघड़ता के प्रेमी कवि चिरसुवा है, उनका राग बरबस उनकी रचनाओं पर फूट पड़ता है, वे अपने को छिपा नहीं सकते...। वैसे वे शब्दों से टकराने में कुशल हैं... आप कितना भी कुरेदें..., वे अपना कुछ न कुछ छिपाये रहेंगे।

मेहमान नवाजी में बेजोड़ हैं। छोटा हो या बड़ा बिना उसे कुछ खिलाये या कुछ दिये उन्हें चैन नहीं। चाहे दो बताशा ही हाथ में रख दें अथवा इलायची के चार दाने..., आदमियत की कद्र करना कोई आपसे सीखें?

जेब खाली होते हुए भी उनमें नवाबों की सी ठसक है। राजा कसौटा के मुंशी और फिर शिक्षक चलते फिरते मेहमान के आगे पीछे हाथ जोड़े हुकुम मानने वाले चेले चाहिए। विशाल परिवार में जिसका व्यक्तित्व चमकीला हो शुरू से ही कमाऊ पूत रहा है... उसके नखरे सबको सहने ही पड़ेंगे।

देखिए हाथ जोड़े आत्मीयता से पूरित कवि जी की शालीन भव्य मूर्ति आपका स्वागत उन्मुक्त हृदय से करने को प्रस्तुत है। ❑

कुट्टी दादा

दोहरी कसरती देह सांवले गोल चेहरे पर चेचक के गहरे दाग, उठी नाक, सफेद कटी मूछें, सिर पर मुरेठा, मारकीन की वण्डी, घुटनों तक मोटी धोती वाले राम दुलारे बेलहुआ आज भीटा के लिए सपना हो गये।

'सुनाहमरी मुंह' उनका तकिया कलाम था। खेत खरिहान में जुटे रहने वाले इस मेहनती किसान के कुठले भरे रहते, गोरस बना रहता और रईसी की ठसक मेहमान दारी में कोई कमी नहीं होती।

मोटा पहने और मोटा खाने वाले बेलहुवां की चौपाल मेहमानों से खाली न रहती, यम द्वितीया के मेले की भीड़ का क्या पूंछना? चारों कोनो के नाते कबीले डेरा डाल देते, अच्छी खासी बारात का सरंजाम हो जाता पर वे आवभगत में कसर न रखते। बच्चू बाबा का जवार में नाम था, उनके बगीचे के

रसीले मीठे आमों का स्वाद किसने नहीं जाना? और अमावट का क्या पूँछना? पूरे साल तक चलता। बड़ी-बडी मोटी परतों वाले दरी, गलीचा, दसना के प्रतिरूप जेठ की धूप का उपयोग अमरस सुखाने में ही होता। आम की फसल में, आम चूसने की झंझट मोल न ले दादा बड़का खोरवा(कटोरा) भर पके आप का गाढ़ा पना जरूर पीते।

गोइड़ में लेव लगते ही धान बो देते और बटुवे पर बटुवे चावल के चढ़ते रहते मजाल कोई अतिथि, राह चलता भी उस दरवाजे से बिना खाये लौट सके। मेहमानों से बतियाते दादा आधी रात पार कर देते और ''अच्छा अब सोवा'' कह खर्राटे भरने लगते।

जाड़ा पाला की परवाह किए बिना दादा भिनसारे उठते और दिन निकलते कुट्टी का पहाड़ खड़ा कर देते, मशीन में ढले इतने सुन्दर सुडौल कि चबाने का मन चल पडे। गडाँस उनकी सहचरी थी, गांव उनकी इस करामात पर उन्हें कुट्टी दादा पुकारने लगा। भैंसें हौदा में कुट्टी की सानी अघा अघा कर खाती और दोहनी भर देती।

गोरूवारी (पशुओं को चारा पानी देना) में दादा को कमाल था। गांव घर में रहते, बिना काम किये दादा की देह पिराती। काम करने का उन्हें नशा था। वे कर्मयोगी थे वही उनका तप और साधना थी।

चचेरे भाई अनन्त राम को उन्होंने बड़ा लाड़ और संरक्षण दिया। उनके बच्चों को जिस नाजो अदा से पाला वह गांव के लिए निराला था। अपने बाल बच्चों के लिए मरने खपने वाले तो सभी हैं पर चचेरे अल्हड़, अलमस्त भाई पर फिदा होने वाले, दादा सरीखे व्यक्तित्व बिरले ही होते है। रहा भाई, जब तक उनका भाई (कुट्टी दादा) बना है तब तक पिता और पति होते हुए भी वह चिन्ता से कोसों दूर हैं। तुर्रा यह कि दिन रात खपने वाले को भी दो-चार खरी खोटी सुना देना उनका खिलवाड़ था। और घर का यह पुरखा मुस्कराकर ललकार देता 'झंख सारे अपनी जिन्दगी का, हमरा का, आज हुई काल नाहीं, हमरे के रोवइया बा'।

गृहस्थी मजबूत बनाने में दादा ने कोई कसर न रखी। बहुओं को

सुनहले, रूपहले से लाद दिया। सरसों, अरहर, अलसी के दाम बनिया से मिले नहीं कि सर्राफे की दुकान पर बसनी खोल देते। भाई के बढ़ते परिवार खेतवारी खरीदनें में भी पीछे नहीं रहे, कछार का गेहूँ उन्हीं की बदौलत काटने को मिलता है।

जीवन भर पाक साफ रहने वाले दादा ने कभी नियत नहीं बिगाड़ी। तिकडम से दूर, अपनी मशक्कत पर भरोसा रखने वाले दादा गाँव ऊपर रहे पैसे को दांत से पकडा-भाई ने भले ही संगत में षड़यंत्र फूँका - तापा हो, पर दादा का गृहस्थी जमाने का नशा आखिरी सांस तक बना रहा।

चमर नचवा और नौटंकी में रस लेने वाले दादा ने शहर का सिनेमा कभी नहीं देखा, लोगों ने टिकट हाथ पर रख दिया पर दादा ने अपनी टेक न छोड़ी - 'का धरा ससुरे सिनेमा मां'।

देह को रगड़-रगड़ कर नहाने वाले और कपड़े को फींच कर धोने वाले को साबुन से क्या प्रयोजन? अलबत्ता बरात की सुपाड़ी पाने पर कपडों को रेहिया (सज्जी मिट्टी) लेते थे। बरातों में लकदल धोती - कुरता - साफा, पनहीं में ही खासे जम जाते थे उनकी शराफत, रईसी और बुजुर्गों की सभी कदर करते।

परिश्रम उन्हें घूँटी में मिला था। बोझ उठाने, खेतों की कटाई, ओसाई, गेराई, जौरी रस्सी, सुतली बीसों किसानी के कामों में उनको कोई पा नहीं सकता। ऊंट लादे पैदल इलाहाबाद से रीवां दौड़ लगाते। काम करते जीना कोई इनसे सीखे।

दादा ने मौर बांधा था, भांवरे पड़ी... पर गौना नहीं हुआ। दादा अखाडे पर जोर लगा के लौटे, घर में सन्नाटा उदासी छायी थी ससुराल से संदेशा आया था कि सांप काटने से बहू को बचाया नहीं जा सका। दादा ने विधाता के विधान को हँस के झेला और काकी के हाथों से दूध का कटोरा ले डकार गये।

प्रकृति से, काम से, खेत से, पशुओं से, अपनी जिम्मेदारी से नाता रखने वाले दादा को रोते, खीझते, भुनभुनाते, कोसते, खिसियाते, चिढ़ते,

झींखते किसी ने कभी नहीं देखा।

घर की सेवा, निष्ठा, परिवार की हित कामना में इस त्यागी ने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत ठाना। द्वार पर पीपल के नीचे कौड़ा (अलाव) लगता। दादा की लम्बी कहानियां सुनने को मिलतीं 'जैसे उनके दिन बीते - तैसे सबके दिन बीतें', कहते दादा जमुहाते और बिस्तर पर एक दोहर ओढ़ जा पड़ते।

वर्षा की रिमझिम में आल्हा सुने बिना दादा का भोजन न पचता। आल्हा, मनौषा और नैनागढ़ की लड़ाई मुँह जवानी बडे मजे से सुना जाते, दशहरा, यम द्वितीया के मेले में बडी उमंग से जवार के लोगों से भेंट-भलाई करते और बच्चों के लिए लाई, गट्टा, मिठाई लाना न भूलते। मैहर की देवी को मानते 1200 फुट ऊँची पहाड़ी पर 565 सीढ़ी चढ़कर मैया के दर्शन करने, नारियल चुनरी चढ़ाने पहुंच जाते। दादा का विश्वास था कि आल्हा अमर है और वे अब भी हर रात मंदिर में दर्शन करने पहुंच जाते हैं।

'दादा पढ़े कम पर कढ़े ज्यादा थे' पंगत खिलाना पंजीरी बांटने, कड़ाह का ताव संभालने में दादा की पूँछ होती। दादा के देखते उनका गांव एक नहीं रह गया, गांव का वास्तविक उल्लास, उसकी मस्ती जाने कहाँ बिला गई? आज भी सावन में बादल उमड़ते हैं, शरद की चांदनी बागों ओर खेतों में बगरती है, फगुआ आता है पर उसकी कोई छाप नहीं पड़ती।

गांधी उनकी दृष्टि में अवतार था। कारिन्दा, मुखिया, चौकीदार, पटवारी के युग के दादा ने सभापति, लेखपाल, अमीन, ग्राम सेवक की कारगुजारी भी देखी, गांव में बढ़ती चोरी, डकैती, छीना झपटी, बदनियती लपटता से दादा का दिल दहल उठा। बुढ़ापा खुद एक रोग है, दादा की देह जड़ाया करती, दाना खबाता नहीं, दूध पीकर दिन गुजार देते, परिवार से सेवा कराई नहीं और एक रात बच्चू बाबा की निशानी, परिवार के कुट्टी दादा भगवान के प्यारे बन गये। यमुना मैया की लहरों ने उनकी राख को अपने में समेट लिया। परिवार का कोई सदस्य ट्यूबवेल के कमरे में टंगे उनके विशाल चित्र के सामने माथा नवाकर 'कुट्टी दादा' के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने में

सुदामा बाबा

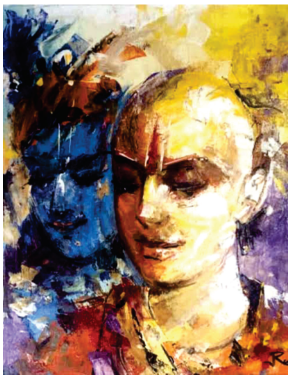

कृष्ण सखा सुदामा ब्राह्मण के तीनोंपन दरिद्रता में अवश्य बीते थे। पर द्वारिकाधीश की कृपा से उनके अन्तिम दिन तो सुख से बीते। हमारे सुदामा बाबा कढ़िल-कढ़िल कर और दाना पानी को तरस तरस कर मरे। जन्म के समय के भाग्यवान को अनाथों की तरह दम तोड़ना पड़ा। चलते पुर्जे लोग वृद्ध की जायदाद हड़प उसको असहाय बना देते हैं, 'छूछे को कौन पूछे' अंत उसका दुःखदायी होता है।

खेत थे-बाग थे, गायें थीं, बड़ा खानदान था पर पिता के आंख मुदते ही सब में छूत लग गई... बरक्कत हवा हो गई...। मेलों ठेलों में, नशा पत्ती में, कौड़ी और ताश में, नाच गाने में पैसा उड़ने लगा। जमीन पर दांत लगाए महाजनों की थैलियां सुदामा के लिये खुली रहतीं...। महाजनों के दलाल 'खाओ पीओ और

मौज उड़ाओं' का सूत्र रटाने लगे। हर तीसरे वर्ष वैद्यनाथ धाम का भण्डारा होता..., गया तीर्थ में पुरखों को तारने के बाद बाबा ने जो भण्डारा किया उसकी याद में आज भी लोग अंगुली चट करने लगते हैं। केवड़े से गमकाया शरवत गलियों में बहा था..., पूरे दो दिन गांव में चूल्हा न जलाने की मुनादी करा दी थी बाबा ने...। महीनों पहले जवार में घूम-घूम बाबा ने भण्डारे की पूड़ी खाने का न्यौता बांट दिया था।

बाबा को नाच देखने का चस्का था...,नचनिया उन्हें ताड़ते रहते..., बाबा का हाथ पकड़ लेते..., बाबा टेंट से विक्टोरिया, पंचम जार्ज के टनटनाते गोल सिक्के निकालते जाते। मेले में अकेले घूमना वे शैतान का काम समझते थे...। पूरी गोल का खर्चा बाबा ओढ़ते... चाहे गंगा नहान हो अथवा दशहरा।

हिसाब रखना बाबा बनियों की चाल मानते। गल्ला सीझा लाद वाले बाबा का माल छटांक ऊपर ही लेत। धरती की कमाई में बाबा ज्यादा मीन-मेख न करते, कौन उन्हें रोजगार करना है? बनिया धीरे-धीरे भुगतान करता, दस पांच घट भी जाय तो बाबा का क्या बिगाड़ लेगा?

बाबा की एक मात्र बिटिया जब कभी उनके पास रहती, नहीं तो वे स्वयं पाकी थे। औरतों की चूड़ी का धोवन उन्हें पुसाता नहीं था। आम ताकने में बाबा चौकस रहते, हंसी मजाक में उन्हें रस मिलता। बाबा के स्वभाव से वाकिफ गांव की मजदूरिनें झोली भर छटे आम लेकर ही लौटतीं। जमाना बदलता गया... शरीर ढलने के अनुपात से जायदाद भी खिसकती गई। सत्तरवी वर्षगांठ तक तो उनका अच्छा बीता पर अब ढलती उम्र पैसे की तंगी ने रौनक में फर्क डाला...लूट खसोट मच गई... बाबा को झकझोरने वालों की कमी न थी। जब कोई खास वारिस न हो तो लोग जीते जी बाबा का सब कुछ हथिया लेने को उतावले हो गए, बाबा के सामने जीवन भर खाना-कपड़ा-खिदमत के चारा फेंके जाने लगे और एक दिन महाजन ने बाबा को फुसला कर, पालकी में चढ़ा तहसील के सरकारी कागजों में बाबा के कांपते हाथों में कलम पकड़ा सब कुछ समेट लिया।

खातिर तवज्जो में बाबा के दिन बीतने लगे..., बाबा ने संतोष की सांस

ली। माया से मुक्ति पाई... मचिया पर बैठे सुरती मलते बाबा ज्ञान बखारने लगे। कौन मूंढ़ (सिर) में उठा कर ले जाता है... दो गज कफन से ही नाता है... आध सेर आटा की कमी कहां है... खानदानी दांत पीस कर, मन मसौस कर रह गये। बाबा किसी के दबेल न थे, उनकी अंतरात्मा ने जो ठीक समझा वही किया..., दूसरा दखल क्यों दे?

बाबा कब तक जिये? अस्सी बीता, सत्तासी पार कर गये... दोनों जून पटे पर बैठ जाते हैं। कहां की तृष्णा समा गई है... छौंक बघार में तनिक कमी हुई नहीं कि टोंक देते हैं। बच्चों को दूध हो अथवा न... उनकी बला से, उन्हें डकारने के लिये बड़की गिलास दूध चाहिए ही। अरे, जितना इनकी संभाल में खर्चा होता है उतने में तो गांव खरीद लिया जाता, इस प्रकार की चर्चा आंगन में होने लगीं। अब बाबा को गरम-गरम रोटियां देने की फिकर मंद पड़ गई। सुबह की रोटी शाम और आज की कल मिलने लगी..., बाबा यह देख सुन कर भी मौन थे। महाजन के घर की बहुओं की झनझनाहट उन तक न पहुँच सके... इससे भगवान ने उन्हें बहरा भी बना दिया। चौपाल उनके थूक खखार से महकने लगी। बूढ़े सुदामा टुकुर-टुकुर देखते रहते... चू पड़ते... कातर हो उठते... उठा लो भगवान..., चिल्ला पड़ते। इनकी मौत का फरमान... पता नहीं किस फाइल में गुम हो गया... यह देरी सबको अखर रही थी।

* * *

बाबा ने सोटा संभाला ओर पुरखों की देहरी पर माथ टेक अपनी मड़ैया में रमने चले गये। महाजन का धर्म चेताते वहीं खाना पानी पहुंच गया। बुढ़ापा रो उठा...जवानी के कहकहे... पैसे की गर्मी... जमीन जायदाद की अकड़..., सपना हो गई। एक एक दिन पहाड़ हो रहा है..., भला हो पड़ोसी तिनगू पासी का जिसकी घर वाली चौपाल लीप देती, उड़चावन कस देती, पियरा बिछा देती, बाजार से गुड़ सुरती ला देती और पानी भर लाती। बूढ़े सुदामा की मां ने चावल के माड़ में छिपा-छिपा कर के घी लौदे पेट में डाले थे... यार दोस्तों की महफिल जमी रहती थी... कौन कहां तक साथ देता... ग्लानि और क्षोभ से जर्जर सुदामा को मांगे मौत भी नहीं मिल रही है।

*   *   *

पूस की रात... पानी गिर चुका है... किसान का हौसला बढ़ गया है... तीर- बरछी वाली हवा चल रही है... चौपाल में खेलते पड़ोस के मुल्लू - नन्दू - भैंरो ने देखा... बाबा ने अभी रजाई नहीं खोली... हम लोगों का कलेवा पच गया... दुपहरिया चढ़ गई... और ये उठते क्यों नहीं।

गांव ने देखा कि गिने आठ-दस आदमी बाबा की खटिया जमुना मैया की ओर लिये जा रहे हैं और महाजन के यहां जाड़े के सत्कार में चौसेला, बाजरे का पुआ, कचौड़ी, गर्म पकौड़ी कढ़ाई में नाच रही है।❑

रसीले बाबा

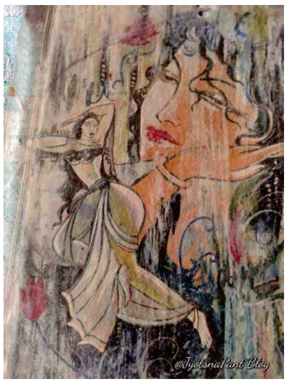

फ्रायड का काम बाबा के जीवन में पूरी तरह छा गया था। सिर भौहों के सफेद बाल भी उनकी रसीली तान को छुड़ा न सके। नाच की महफ़िल उनके बिना सूनी लगती। तुलसी के राम, सूर के कृष्ण से उनकी साध का मूल्य कम नहीं आंका जा सका। ठूँठा पेड़ हरियाली के अभाव में झुलसता रहा और अतृप्त लालसा सँजोये बाबा दुलरिया की अमानत 'माधुरी' को सब सौंप चलते बने।

* * *

पक्के बीस बीघे मौरूसी इन्तखाब रखने वाले जगदेव की रियासत का उत्तराधिकारी वही हो सकता है जो बाबा का बुढ़ापा पार लगा दे। बाबा के भोले स्वभाव, रंगीन तबीयत और मस्तानी अदा पर फिदा होने वालों की कमी नहीं थी। बाबा की गाढी रकम की थाह कौन पा सकता है?

हंसी मजाक के अवतार बाबा... बहू लगती हो अथवा भौजाई, ठिठोली से

बाज न आते। फगुआ में उनकी अ र र र कबीर.... की ध्वनि से गांव की चुड़िहारिन, भुंजाइन, तेलिन, नाउन सभी पनाह मांगती।

*   *   *

भुंजवा की जवान 'दुलरिया' ससुराल से नाता तोड़ भाई-भौजाई की गृहस्थी संभाल रही थी। ढूंढेरी को फगुहारों की टोली उस टोले पहुंची नहीं कि बाबा टेर देते - अ र र र.....गायल्या हो आज कबीर -

''मोरे पिछवरवा भुंजइन क बेटी लेहल तराजू उठाय।

नयन देखाय के टेंनी मारे, गहकी गवा भुलाय।

गहकी गवा भुलाय मोरे यार, तऊल ताल के कइलस प्यार।''

एकहरी देह, लंबा कद, ठिगनी आंख वाले बाबा की मिर्जापुरी लाठी ने सेरों तेल पिया है। चमचमाती लाठी और तेल से तर पनही और फुलरादार थैली उनसे कभी छूटी नहीं। अमिलिया, पचवर, रामगढ़ और भीटा के मेलों में वे अपनी चौकड़ी के साथ जम जाते। हर कोने की मेला घूमनी औरतों की चाल ढाल का तखमीना लगाने वाले बाबा कुशल शिकारी की भांति अपने अहेर पर पैनी निगाह रखते।

गांव जवार की मुंह बोली मेहरारुओं की झोली लाई-मिठाई से भर जाती। नाज़नीनों के मुख से निकली गाली... वरदान समझने वाले बाबा आंखें सेकने से कभी न चूकते थे।

बाबा जब कभी गुड़ सुरती लेने बाजार जाते तो रेलगाड़ी के समय प्लेटफार्म पर जरूर पहुँचते। पूरी गाड़ी की परिक्रमा करते, जनाने डिब्बों को भरपूर ताक कर आंखों में समा लेने वाले बाबा के चस्के को कोई भांप न सका।

शौकीन बाबा नाच की गंध पाते ही पूरी तैयारी से महफिल में जम जाते। चांदनी रात में लालटेन और मसालों के प्रकाश में बेड़नी (ग्राम नर्तकी) के रसीले नाच पर बाबा बेकाबू हो जाते। उनका हृदय फ़ड़क जाता, वे आत्मविभोर हो जाते, कौन जाने... बेड़नी के पैरों के साथ-साथ उनके पैर भी थिरकने लगते। गानों की धुन और बाजों की आवाज पर थिरकने वाली बेड़नी बाबा को ताकती रहती है और बाबा की मुठ्ठी खोल टनटनाता रुपया निकाल लेती।

सहालगों में कई डेरों की नाच आये बिना ठाकुरों और रईसों की बारात कैसी...? बाबा ताकते रहते, दिन गिनते, मीठे सपनों में खोए रहते और नाच की

महफ़िल उनके बिना सूनी लगती। तुलसी के राम, सूर के कृष्ण से उनकी साध का मूल्य कम नहीं आंका जा सकता।

बाबा की अंगुलियों के पौर में नचनियों के प्रोग्राम समाये रहते। मंडलियों के संचालक रसिक बाबा को आड़े हाथों लेते। गांव के हरवाह द्वारनाच में उनसे भरपूर नेग पाते। चटक मटक वाली मजदूरिनें उनसे राम जोहारकर रुपया और अनाज उधार लाती। ड्योढ़ी सवाई में कमी कराती और अपनी चितवन से मूल जमाकर ब्याज साफ डकार जाती।

जेठ की तपती दुपहरी बाबा लंबुआ आम के नीचे काट देते। रसीले पके आमों की गंध... खुरपी लिए, खचिया लिए और गिलट के गुड़हरे (पैर के कड़ा) पहने पतरकी, ननकी, पुरवइया आदि अल्हड़ मजदूरिनों को बौरा देती। बाबा पेड़ की टुन्नी पर चढ़कर उन्हें भरपूर आमों का स्वाद लेने देते।

मसे भीगने के पहले ही मां-बाप का साया उठ गया था। मोर बांधने की परवाह न की। मौज मस्ती में दिन सरकते गए... खाने पहनने को धरती दे ही देती थी... खेत बटाई पर देते, दिल बहलाने..., समय काटने के लिए पशुओं की चराई का जिम्मा ले लेते..., चरवाहों के साथ कहकहे लगाते..., गाय-भैंस की महतारी - नानी से संबंध जुड़ता..., सिमार में गांव के मानिंदो की नकल होती..., बड़े बड़े घरानों के राज खुलते..., घुंघट की ओट की चर्चा होती..., हंसी दिल्लगी में दिन सरकता रहता। सांझ होती... टिमटिमाते दिए के प्रकाश में बाबा की रसोई बनती..., दिवाली से होली तक ओढ़ी जाने वाली रजाई बाद में बिछाने के काम देती। दो-चार मटकी और गिनी चुनी सामग्री के अलावा और रहता ही क्या? दिल के रंगीन बाबा, मस्त फकीर की भांति रहते, सोने के पहले माला सरकाने में नागा न करते और दो-चार भजन टेरे बिना चारपाई से उतरते नहीं।

तीसरे चौथे साल बाबा की कोठरी में सेंध होती... धरती भीतर की रकम की टोह होती... पर, किस्मत के धनी बाबा के यहां चोरों की दाल न गलती। बाबा अपनी धरोहर किस कोने रखते हैं... कोई भांप न सका।

* * *

गांव में भुजवा की दुकान ही बाबा का आकर्षण केंद्र थी। दुलरिया की नुकीली ठोड़ी पर तीन-तीन बुद्किनों में खुदा गोदना बरबस मन खींच लेता। प्रकृति दत्त उसका असंवरा सौंदर्य भी दीपशिखा की भांति जगमगा रहा था। दुलरिया के हाथों

भुनी शकरकंद, उसके हाथों बंधी लाई, उसके द्वारा भुने चबेना में बाबा को गजब का स्वाद आता। घंटों बैठे बाबा का सरौता चटकता रहता, सुपारी के लच्छे निकलते रहते और दरबारियों के मुंह खैर, सुपारी लोंग से गमका करते। नाक नख्श वाली सुल्ताना दुलरिया की धाक जमी रहती, उसकी जवानी की ठसक, उसकी अदा, उसके नखरे पर महफ़िल बलिहार रहती। रूपलोभी भौंरे उस पुष्प के चारों ओर मंडराते रहते।

* * *

पूस की अंधियारी रात... हाथ को हाथ नहीं सूझता। महावट गिरा था... दिन में भीगने से बाबा की देह जड़ा गई थी... घुरसी की आंच में बाबा अपने को गर्म कर रहे थे। दरवाजा खटका..., सामने दुलरिया को देख बाबा चकरा गए। कान में फुसफुसाहट हुई..., बाबा को झटका लगा..., दुलरिया सिसक रही थी..., बाबा से पनाह की भीख मांग रही थी। एकमात्र बतरस लोभी बाबा अचकचा के रह गए। गांव के मानिंद ठाकुर गजाधर के लड़के मानिक सिंह से उसे तीन माह का पेट है। मानिक ने अकाल जलद की तरह उसके संयम के दिन को मलिन कर दिया था। बाबा ने ओठ भींचा..., कुछ निश्चय किया..., दुख की सहानुभूति हृदय को समीप पहुंचाती है।

दुलरिया बाबा की कोठी में रम गई। बेवफा मानिक गांव छोड़ चुका था। दहशत का भूत उसे घेरे रहता..., गजाधर दांत पीसकर रह गए। उन्होंने बाबा की सफेदी पर छींटा कसा..., गजाधर का विरोध करना सहज न था। तमाशबीन गांव ने चुप्पी साध ली।

दुलरिया बाबा की कोठरी लीप रही थी। उसे कुछ अंदेशा हुआ..., किवाड़ा बंद कर खुरपी से खोद डाला..., पसीने से नहा उठी..., रुपयों से भरा बटुआ था..., उसे चक्कर आ गया, उसने ज्यों का त्यों धर दिया। दुलरिया का खोयापन बाबा से ओझल न रहा...। बाबा को जीते जी जला देने वालों ने घर फूंक दिया। बाबा बाल-बाल बच गए। दुश्मन का हौसला पस्त हुआ... एक अज्ञात भय की सिहरन रह रहकर दुलरिया को कंपा रही थी। दुखी हृदय, दुखती हुई आंख है जिसमें हवा से भी पीड़ा होती है।

दुलरिया अपने पीछे बाबा को सांसत में पड़ा देख चकरा गई और एक रात दिल कड़ा कर अपने गांव और बाबा का मोह छोड़ अपने भाग्य पर निकल पड़ी।

* * *

गजाधर ने मैदान साफ देखा, मानिक को खोज कर उसे बुला लिया। नाक ऊंची रखने के लिए उसका ब्याह रचाया और पौत्र के जन्मोत्सव पर नाच दावत का सरंजाम हुआ।

बसंत अपने यौवन पर था। खेतों में गेहूं, चने की लहलहाती फसलें मस्ती में झूम रही थी। नीलम के गीतों से राग रंग की सरिता उमड़ चली थी।

भर पिचकारी मोरी अंगिया पर मारी।

चोली भिगोई मोरी भीज गई सारी।.....

नीलम की आंखें दर्शकों को टटोल रही थी..., नोट बरस रहे थे...। अपने श्रृंगार परिधान में वह अलबेली बनी थी। चेहरे की दीप्ति ने जैसे बढ़ते वयस की स्पष्ट पदचाप सुनकर भी अनसुनी कर दी हो। उसमें सबसे बड़ा आकर्षण था लाल डोरीदार रसीली आंखो का। एक बार उन आंखों से आंखें चार होने पर कोई भी सहज में आंखें फेर नहीं सकता था। बाबा के हाथों से भी उसने सिक्का पकड़ा, उसके उद्दाम मनोहर नृत्य ने सभा को विमुग्ध कर दिया था। आल्हाद में डूबे मानिक से भी आंखें चार हुईं..., भावातिरेक से उसके थिरकते पांव डगमगा गए। नीलम संभल न पाई..., नशा उतार पर था..., वादन रुक गया..., नाच थम गया। कंठ रुँध गया, दर्शक सकते में आ गए। नीलम पर्दे में पहुंच चुकी थी, उसके संकेत पर बाबा बुलाए गए। वह चरणों पर लोट पड़ी, बाबा कुछ समझ ना पाए। उसकी आंख सहस्त्रधार हो कर अपनी मनोव्यथा बहाने लगी। अत्यंत आर्द्र कण्ठ स्वर में बोली- बाबा अपनी दुलरिया को इतनी जल्दी भूल गए।

आज की नीलम वही ठुकराई दुलरिया है। बिटिया के लिए ही अब तक मैं अपने ढलते हुए यौवन को रोक रखने की चेष्टा में व्यस्त रही आई। अब मैं शांति से चोला छोड़ सकूंगी। बाबा मेरी अमानत संभालना। मानिक की धरोहर बच्ची माधुरी जयपुर के वनस्थली विद्यापीठ में शिक्षा ले रही है, उसे इज्जत से रहने की भीख तुमसे मांगती हूं..., बाबा ठुकराना नहीं। दुलरिया के सिर पर फिराते बाबा के हाथों ने भरोसा का मंत्र फूंका।

*　　　*　　　*

बाबा के जीवन की धारा मुड़ चली... शंखनाद हुआ... कर्तव्य बोध जागृत हुआ। लोगों ने देखा और सुना कि बाबा ने अपनी जमा पूंजी माधुरी बिटिया के विवाह

में लगा दी और जवार के मानिंद ठाकुर गजराज सिंह के युवा पुत्र इंद्रपाल और माधुरी की जोड़ी को टक-टक देखते हुए आशीर्वाद दिया। तहसील के कागजों में अपनी जायदाद माधुरी के नाम कर बाबा ने संतोष की सांस ली। ❑

“बिरजू काका”

झिनगी चारपाई, अस्त व्यस्त बिछौने पर टेढ़ी अकोली रजाई ओढ़े, नब्बे वर्षीय बिरजू काका की ठठेरी देख मन रो पड़ता है। ऊँचा सुनते हैं, आंखों से फरियाता नहीं, आंत उतरती है, चैन नहीं पड़ती, सौ मर्जों का मर्ज बुढ़ापा पिण्ड नहीं छोड़ता। आंखें सूजी व कीचड़ से सनी। काका गठरी बने दिन-रात चौपाल पर लेटे रहते हैं, भाई-भतीजे, नाती-पोते सभी थक गये हैं, कहां तक सेवा करें? भगवान के यहां इनका कागज खो गया..., पता नहीं कब तक छाये रहेंगे।

के आय भइया। कब आये, मजे में रहे, बडी टनक से पूछेंगे, आशीष देंगे, और अपनी बेबसी पर दो आंसू लुढ़का देंगे। अरे इन्हीं बिरजू काका की संची गृहस्थी पर भतीजों का रंग चोखा है। काका ने जमाना देखा है, उसे भोगा है, साधना की है, जोखिमें उठाई हैं, संघर्ष झेला है और आज ये दो टूक रोटी

समय से पाने को मोहताज है। दिन भर में चार बेलहाई (चकले की पतली रोटी) खा लेते हैं, दाना मिठाता है, यही उनके स्वस्थ और जीने का सबूत है। किसानी के काम में चूर किसे फुर्सत है काका को सहलाने की उनकी देखभाल की?

बिटिया सिरताजा जब कभी अपने नाती पोतों से छुट्‌टी पा, दस-पांच दिन को आ जाती तो काका का बड़ा सुभीता लग जाता, देह में मालिश हो जाती गरम पानी से देह पुछ जाती, बिछौना करीने का हो जाता, चेहरे पर चमक आ जाती, चौपाल लिपी रहती, बीमारी और बुढ़ापा धन्य हो जाता।

* * *

साठ साल पहले काका ने मुखिया, थाना, कचहरी, गांव, कुटुम्ब, कबीला की परवा न कर गांव की सुघड़ बाल विधवा ब्राह्मणी का हाथ पकड़ा और निबाहा था। भाइयों ने अलग किया, गांव ने नाक भौं सिकोड़ी, पंचायत बैठी पर... काका से बेवफाई न हुई और न हुई। उनकी दृढ़ता ने, उनकी शराफत ने, उनकी जवान और मीठे व्यवहार ने फिर सब कुछ संभाल लिया, यह कौन नहीं जानता?

काका ऊँट लादते थे, सौदे की खरीद और बिक्री करते थे, मनों अनाज के ढ़ेर, मिनटों में तौल के रख देते थे, बाजार से साबका पड़ता था, लाई-गुड़ मिठाई से प्रेम था, खेत में मजाल है तिनका दीख जाय, जेठ की सी दुपहरी में गोबर सेत कर घूर खड़ा कर देते, खेतों को पांसते, निराते, गोड़ते और दाना (अनाज) से कुठला भर देते।

सिरताजा और किशन दो संतानों की थाती सौंपते हुए घरनी ने इन्हें 'रडुआ रोवेरे फागुन में, सुन-सुन बिछियन की झनकार' की स्थिति में डाल दिया था।

किशन ने भी भरी जवानी में काका का साथ छोड़ा..., काका का दिल टूट गया, कमर झुक गई, बिटिया के भरोसे, उसी के दुख सुख में काका अपने आपको शामिल मान, किसी तरह उलझे-सुलझे रहे। साधुओं का सत्संग किया, गांव में कोई गेरूआधारी बिना उनके यहां भिक्षा लिये जा नहीं सकता था। साधुओं के झुंड में उनकी सेवा करते हुए काका ने बदरी और केदारनाथ की

पैदल यात्रा कर डाली थी।

होली के खिलैया काका अंगोछे की झोली में गुड़ की भेलिया रख भौजाईयों में बांट आते, उनसे रंग खेलते, फाग गाते, होरी के जलूस में अबीर से भौहें, कपार और मुंह लाल किये, मजे से दिल खोलकर अर र र अबीर टेरते। उस दिन 'आज सदाशिव खेलते होरी, जटा-जूट में गंग विराजे अंग में भस्म रमोरी...' गाने वाले बिरजू काका रंग में सराबोर हो जाते, पान चबाते, बड़का खोरा (कटोरा) भर भांग छानते, सोंठ गुड़ की गुझिया खाते और मस्ती से गांव घूमते।

खरिहान के पास वाले महुआ के नीचे ही सिर को दोनों हाथों से ढांक कर शौच करते सभी ने देखा है, वे जब किसी को नहीं देखते तो उनकी समझ में उन्हें कोई नहीं देखता, ऐसा उनका विश्वास था।

धान के खेतों में पानी भरा रहता, कीचड़ में धंसे काका खेत निराते रहते और कोई न कोई गीत गुन गुनाते रहते और कहते, 'दूध भाती का मजा बिना कसाले के कहां धरा है बच्चा'। घास का बोझ लाद कर चलते, कमर टेढ़ी हो जाती, निहुर जाते पर मेहनत से घबड़ाते नहीं, आराम को हराम समझते।

दावत में ललकार दीजिए और आम के रस (पना) अथवा गोरस (दूध, दही) में शकर के साथ पूड़ी मीस दीजिए काका मजे से आशीष देते हुये खायेगें छककर, पोपले मुंह से हंसते हुए प्रायः यह कहनी भी कह देते थे।

''दुइ जन दौड़े, पाइन पांच जन खाइन बत्तीसजन, सुआद पाइन एक जन''

* * *

लगान छमाही चुकता करते, लेन-देन साफ रखते, भैंस पालने के शौकीन काका को भैंस दुहने में कमाल था। ठकुराने तक उनकी कदर होती और वे सबके आड़े आते।

माठा भंवाते, नैनू (मक्खन) घी निकालते और दोनों टांग फैलाकर कटोरा हाथ में साध, लोंहदी, काययूद का गमकता दूध भात चीनी के साथ जरूर खाते, चहबोरी रोटी खाते और खिलाते थे, गुड़ तो उनके कुरता के खलीसा (जेब) में बना ही रहता।

तिकड़म से दूर रहते..., अपने काम से काम रखते..., प्रपंची भाई को झिड़कते रहते..., राम का नाम लेते..., गौ - ब्राह्मण के भक्त बिरजू काका किसी के यहां मेहमान आता और जानते कि वहां गोरस नहीं है तो अपने हाथ से अंगोछे का सहारा ले कटोरा भर गरम दूध पहुँचा आते।

द्वादशी, पूरनमासी, सावन और मलमास में ब्राह्मण भोजन कराते विधि विधान से, बिटिया को बहुत मानते, उसकी खोज खबर लेने पहुँच जाते और फसल की हर चीज पहुँचा आते, साधु सेवा में चूक न करते, उनकी टहल में आलस्य न लाते।

बाजरे की दूढ़ी (लड्डू,) महुए का लाटा उन्हें प्रिय लगता, दैठाया महुआ दही के साथ खाने में मजा लेते, कड़ाह में बैठने, पंगत जिमाने, पंजीरी बांटने, शरबत पिलाने में काका हाजिर रहते।

ढ़ाई गज मारकीन के अंगोछे का साफा बांधे, लम्बा कुरता, चमरौधा पनही, हूरेदार लाठी रखे काका बाजार बेसहनी (खरीद) को पहुँच जाते। बनियों की बढ़ती मनाते..., काका पाव भर चीनी से एक लोटा मधु सरीखा शरबत अपने हाथ से बना कर और पीकर ही लौटते। चमर नचवा में बड़ा रस लेते, नर्तकी के साथ घूमता मशाल और ढ़ोलक, किंगडी और मजीरा के साथ, 'बिजनैया डुलाव, बिजनैया डुलाव, राजा पसीना में डूब गये' गीत पर आप लोट-पोट हो जाते।

शहर बाजार की मिठाई वाली बारात की प्रशंसा करते अघाते नहीं..., मिठाईयों के नाम लेते-लेते अब भी मुंह में लार आ जाती है उनके। अलाव में उनकी लम्बी कहानियां चुकती नहीं थी। बच्चा, बाबा, बचवा, भइया, मुन्ना, बबऊ, भाय उनके संबोधन में गजब की मिठास और आत्मीयता है।

डाक्टरी दवा से उनको चिढ़ है, दवा इस्तेमाल की नहीं, जीभ रोकी नहीं, दाना मिठाता रहे तो जर, खांसी, जुकाम सर्दी को बिना गाली किए बात नहीं करते।

शरीर में फुर्ती, स्वभाव की बेफिक्री और मस्ती उन्हें ताजा रखती पर

आज वही राम रटने वाले विरजू काका का जर्जर शरीर चारपाई पर पड़ा अपने दिन गिन रहा है। अपने हाथ की गुदारी पनेथी खाने वाले काका को, बहुओं की चूड़ी का धोवन पुसाता नहीं... पर लाचारी में जो सामने आता है उसे निगल जाते हैं। उनका शरीर दिलासा चाहता है..., किसी के हाथों का स्पर्श चाहता है..., चाहते हैं कोई बैठ कर उनकी सुने, उनका अतीत कभी-कभी उछलने लगता है और वे अपनी बीती, जग बीती सब सुना जायेंगे एक सांस में।

जीवन का उतार चढ़ाव देखा है, गरीबी भोगी है, अकाल झेला है, सूखा, पाला, पत्थर और पानी के प्रकोप को सहा है, थाना कचहरी की ज्यादतियों से परिचित हैं..., गांव के भले बुरे से वाकिफ है...।

इस बूढ़े शरीर में शताब्दी का अनुभव समाया हुआ है, ग्रामीण संस्कृति, वहां की सरलता, निष्कपटता, सहजता की पूँजी समेटे यह बूढ़ा कब चल बसे..., कौन जानता है?❑

पासिन दाई

बिना किनारी की मटमैली मारकीन की धोती पहने, श्याम वर्ण, दोहरे गठे शरीर, चौड़े मुँह वाली पासिन दाई जिस घर से निकली कि लोग सुगबुगी लगा बैठते कि गृहस्थिन के बाल-बच्चा होने के आसार हैं...। कोख की सही और प्रसव की समस्त क्रियाओं से भिज्ञ पासिन दाई, आज की सर्टीफिकेट सुदा नर्सों से कहीं बेहतर थीं।

संदेशा मिलते ही पासिन दाई घर का सब काम छोड़, परोसी थाली भी..., तेज कदमों से जच्चा के पास हाजिर हो जाती। कटोरी में तेल गरम करवा उनके जादू से भरे हाथों का स्पर्श पा कराहती जच्चा त्राण पा जाती...। एक सच्चे खिलाड़ी की भाँति हँसते खेलते बिना किसी हिचक के 'बच्चे' को धरती दिखा देतीं। पेट में बच्चा उलट गया या मृत हो गया..., तो भी गाँव की यह सधी

बुढ़ी दाई अपने देवी और देवता का सुमरन कर वह जुगत रचती कि सुनने वाले दंग रह जाते...। तभी तो आज भी उसकी बड़ाई में लोगों की आँखें छलछला पड़ती है।

सौरी में कच्चे दिल वालों को दाई एक क्षण रूकने न देती। पीठ सहलाने, धीरज बंधाने, साहस जुटाने में दाई को कमाल था। उनकी ममता भरी बड़ी कजरारी अंखियों की ओर टकटकी लगा जच्चा उनके हाथों समर्पित हो जाती..., दादी मारो - चाहे जिलाओं..., उनकी चीख होती थी।

दाई ने जमाना देखा है। नौ वर्ष की बच्ची थीं... जब वह इस गांव में बहुरिया बनकर आई थीं। गांव का काला सफेद उनसे छिपा नहीं, किस घर का पेट नहीं देखा है उसने, किसकी कोख नहीं जानी है दाई ने। उसके पेट में गांव का रहस्य समाया हुआ है..., पर पासिन से उगलवाना सहज नहीं है। बड़े-बड़े दरोगा सिपाही मात खा चुके हैं...। दाई ने मशक्कत से कतराना सीखा नहीं था, खेत खरिहान में भूत की तरह जुटती थीं, मुँह अंधियारे झौंवा भौंकी ले निकल जातीं और कलेवा जून तक सारी बगिया का महुआ समेट लातीं दाई। परसैल तारा के पथरा पर टांग फैलाकर एक दो बजे के पहले दतून करते उन्हें किसी ने नहीं देखा। पूनों का उपवास रखती..., साल में एक बार साँझ की गाड़ी से मैहर जातीं और दूसरे दिन शारदा माई को रोट चढ़ा, मनौती मना लौट आतीं। पक्का पूजा में बाजा बजवातीं और पूरे पसियान को रसियाव सोहारी खिलातीं।

पासिन दाई दिल की साफ थीं, अमीर गरीब को एक निगाह देखतीं। गरीब गृहस्थिन बच्चा जनते-जनते थक जाती, दाई से जुगत पूछती, मुस्कुराती हुई दाई भगवान की देनी समझ संतोष दिलातीं और कहती दुलहिन घूरे के भी दिन बहुरते हैं..., कौन जाने यह कोख तुम्हारा सब दरिद्दर छू मंतर कर दे।

कोई कुछ दे या न दे, अहसान माने या न माने, दाई योगी की भांति अपनी साधना में लीन रहती। सौर गृह में उनकी फुर्ती, उनका प्रत्युत्पन्नमतित्व, उनकी अकड़, उनकी डाँट, उनका नेतृत्व... देखते ही बनता। वह अपनी जिम्मेदारी को निभाने के आगे किसी को कुछ नहीं समझतीं, उनके इशारे पर बहू बेटियां फुदकती रहतीं, उनका रोब छा जाता..., मजाल कि उनकी मर्जी के

खिलाफ कोई चूँ कर सके। पर धन्य है दाई..., उनके हाथों का जस बिगड़ी को भी बना देता। घबराहट के क्षण खुशी में चमक उठते..., थाली बज उठती..., आँगन पर मुखिया की बंदूक दगने लगती, पड़ाइन और नचका लोहारिन के कंठों से सोहर-गीत फूट पड़ता।

जच्चा को आराम से सुलाकर, उसकी संभाल का ढ़ंग सिखाकर, अपनी करनी भगवान को सौपती दाई जब सुख संतोष की सांस लेतीं तो उसका चेहरा कर्तव्य पालन की खुशी में दमक उठता।

उन्होंने रजिस्टर नहीं रखा पर उनके जन्माए बच्चों से आज पूरा गांव आबाद है। उनकी फोटो नहीं खिंची, अखबार में नाम नहीं आया..., पर गांव जानता है दाई के उपकारों को, उनकी निष्ठा को, उनकी सूझ-बूझ को, उनके जादू वाले हाथों को और उनकी साधना को।

* * *

मंगरू का फौजदारी में चालान हो गया था। घरवाली के दिन पूरे हो चुके थे। उसकी लाचार आंखों ने दाई को देखा..., दाई ने ऊपर के दैव को निहारा..., अपनी गांठ से रूपया निकाला..., दो कोस बाजार अपने बेटे आनन्दी को दौड़ाकर सोंठ, गुड़, तेल, हल्दी, अजवाइन सभी मंगवा दिया। पूरी चौकसी रस्सी रखी, बखार से गेंहू निकाल कर धुलवाकर सुखवा दिया..., मटकी से घी भी दिया। बुकनू भी बना..., सारा संरजाम कराने वाली के हाथों जन्में, आंगन में किलकारी मारता, गोलमटोल सुघड़ सलोने छह माह के बबुआ को देख मंगरू गदगद हो उठा व दाई के चरणों में लोट पड़ा। दाई ने हंसते हुए फटकारा - मर्द ऐसे ही होते हैं? बेचारी को संकट में डाल मर्दानगी दिखाने गया था न ! और मजा तब... मंगरू हार गया पर दाई ने कुछ मुआबजा न लेने की कसम ले ली थी। उसने कहा, 'बेटा विपदा में मनुष्य ही तो मनुष्य के काम आता है। इसमें काहे का निहोरा और काहे का कर्ज?'

* * *

दाई का घर लक-दक रहता..., मिट्टी गोबर के लीपा पोता घर गमका करता..., आंगन में तुलसी का चोरा रहता..., संझकौरे दिया बाती करती...,

माथा टेकती..., दरवाजे की नीम और पीपल पर एक लोटा जल चढाये बिना दाई मुंह में अन्न का दाना भी न डालती। साठ वर्ष से इस गांव घर में उसने क्या नहीं देखा? गांधी की आंधी में आनन्दी के बाप ने सीना तान कर झंडा उठाया था। उसका दबंग जवार में प्रसिद्ध था। 1942 में इसके गांव में दमन का दौर चलता था। ओफ! सावन की अमावस आनन्दी के बाप बाजार की बेसहनी कर फिर नहीं लौटे... दाई का सुहाग आन्दोलन की आग में धधक उठा।

दाई के कानों ने आजादी की प्रभात फेरी सुनी। 26 जनवरी की चहल पहल भी देखी..., जमीदारी टूटी..., पंचायतें बनी..., ऊँची ऐंड़ी की सैंडल चमकाती नर्सें गांवों में घूमने लगी..., अब बूढ़ी दाई को कौन पूछता? आज के छोकरे बीवियों के इशारे पर तुरन्त शहर भागते। दाई को संतोष है... परिवार नियोजन की चर्चा से। इसे वह गांव के लिए वरदान मानती हैं। उसके सामने अतीत नाच उठता... असहाय, बेबसों के दुख दर्द को मिटाने वाली योजनाओं पर दाई निहाल हो जाती।

दाई के हांथ कांपने लगे..., ज्योति क्षीण हुई..., बुढ़ापा से पाला पड़ा..., बेचारी गांव घर की दुआ समेटे अन्तिम घड़ी की राह देख रहीं थीं।

दाई का जर्जर शरीर... जाड़े का झरियार, 1962 की शीत लहरी नहीं झेल सका और सैकड़ों बच्चों को गोद में थामने वाली दाई असहाय हो, आनन्दी के हांथों में लुढ़क पड़ीं।❑

पाण्डे काका

खींचा तानी, स्वार्थ परता और तिकड़म के झंझावत में फंसे गांव को पाण्डे काका सरीखा व्यक्तित्व ही संभाले है, कहने में अत्युक्ति नहीं। पर दुख कातर पाण्डे काका पर सबकी निगाह है- वे सबके सगे हैं, सबकी मंगल कामना ही उनकी अकांक्षा है और सचमुच वे गांव के दुलारे हैं।

सबकी भलाई करने का उन्हें नशा है, अपने को संकट में डाल कर भी दूसरे का भला चाहने वाले काका के दिल में मैल नहीं, छल नहीं, कपट नहीं, दिखावा नहीं।

बिना उनके गांव का सामूहिक कार्य अधूरा है, गांव हित में वे अपनी आहुति देने से पीछे नहीं हटते, गांव के नाम पर, उसकी मर्यादा पर, उसकी नाक रखने में वे सब कुछ करने को प्रस्तुत हैं। वे अपनी बखार खोल सकते हैं,

बसनी छोड़ सकते हैं, दोहनी खाली कर सकते हैं।

गांव में बारात आई है.., पाण्डे काका परेशान..। गांव की भलमनसी में बट्टा न लगे, गांव की बिटिया के काज में वे अपने को अछूता कैसे रखें? व्यवहार तो एक दिखावा है, छलना है, प्रपंच है, मन पटे का सौदा है...। आज कुछ तो कल कुछ हो सकता है- 'पर बात बिगड़ गई' तो संभालना कठिन होगा। यह चिंता उन्हें मथा करती..। भाई समझाते, बेटे विरोध करते... पर उन्हें, उनकी आस्था से, उनके ध्येय से कोई डिगा नहीं सकता।

मगरू को गांव ने छोड़ दिया। गिरे दिन पर दो आंसू बहाना भी दुश्वार है..। उसकी लाडली टॉयफायड से तड़प रही है..., बेटा गोपाल वैद्य और दवा के चक्कर में यमुनापार की पगडंडी में भटक रहा है... बेटे के सिवा और किसे फुर्सत है..?

दैव के मारे आभागे बाप भाई के कंधो पर सात वर्षीया मुन्नी जा रही है, मीलों घुटने ऊपर पानी..., नीचे पानी..., आंख में पानी..., बाहर पानी की बाढ़..., दिल में दुख की बाढ़...। पैर रपटे नहीं, फिसले नहीं, संतुलन बिगड़े नहीं कि धम से गिरने की नौबत।

गांव की बेरूखई पर चित्त कुढ़ रहा है, बेबसी पर दिल बैठ रहा है, मन कुड़मुड़ा रहा है। पाण्डे काका बीमार थे..., बुखार था, पर... अपने स्वभाव से लाचार थे। कान में भनक पड़ते ही अभागों के आंसू पोछने वे पहुंच ही गये, ढ़ाढ़स बंधाना और शव प्रवाह का भार अब उनके जिम्मे...।

कोई मजमा हो, दावत हो, पंचायत हो, पाण्डे काका के पहुंचते ही सब निश्चिन्त हो जाते। वे जिम्मेदारी निभाने वाले नेता थे, पीछे हटना - मुंह चुराना, जी छुड़ाना उन्हें सुहाता नहीं है। बकने वाले बका करें, कुढ़ने वाले कुढ़ा करें, पर वे दूध और पानी का पानी बताने में संकोच नही करते। जियावन के घरेलू बटवारे में पुत्र प्रेम ने काका की व्यवहारिक बात मानी नहीं, परिणाम... जियावन का बुढ़ापा ठोकर खा रहा है। वे सबके सगे थे, सबको एक ही तराजू से तौलते थे, पक्षपात की गंध नहीं, कोई दांव नहीं-पेंच नहीं...।

गांव की सेवा उनका मिशन था। परेशानी का कांटा निकालने में उन सा माहिर और कौन हो सकता है? वर ढूँढना है अथवा बैल खरीदना है... पाण्डे काका का साथ बेड़ा पार कर देगा। उनकी बहुज्ञता, उनकी सूझ बूझ उनकी पैनी दृष्टि उनका विस्तृत और गहन अनुभव... अपना सानी ही नहीं रखते। वे कृषि पंडित हैं- धरती क्या मांगती है, फसल का भविष्य कैसा है, खाद-बीज पशुपालन आदि के अनेकों-अजीब गरीब नुस्खे आपकी जबान पर हैं। मौसम के पारखी, प्रकृति के जानकार, खेत-खलिहान, घर-चौपाल, बाग-बगीचे, गाय-भैंस, घोड़ा-ऊँट सभी पर आपका दखल है। पढ़े कम पर कढ़े अधिक हैं। जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे हैं, गरीबी की पीड़ा और अमीरी का ठाठ दोनों भोगा है, मान अपमान के घूंट पिये हैं। फूल और पत्थर दोनों सहे हैं।

वे शरीर से ठिगने होते हुए भी अनुभव में लम्बे हैं। वे पक्के किसान, सफल गृहस्थ, कुशल समाज सेवी और कर्मठ नेता हैं। समाज कल्याण उनके जीवन का ब्रत है... उन्हें ढोंग से घृणा है। लम्बी पूजा अर्चना के लिए अवकाश नहीं, प्रति पूर्णिमा को गंगा मैया की गोद में हिलकोरे लेने के सिवा और कोई तप नहीं है। पर वे भगवान के न्याय पर अटूट विश्वास रखने वाले आस्तिक हैं। किसी की बेबसी से लाभ उठाना उन्होंने जाना ही नहीं, किसी का बुरा चेता नहीं, सब सुखी रहें यह उनकी एकान्त भावना रही।

किसी की इज्जत पर आ पड़ी हो..., पाण्डे काका पसीज उठते। अपने पास न हो तो दूसरे से लेकर सहायता पेक्ष्य का काम बनाते। वे ठगे भी जाते पर... इसकी उन्हें परवा नहीं, लोग ताना कसते पर... इस ओर सोचा नहीं।

द्वार के चबूतरे पर नीम तले बैठे पाण्डे काका की आंखों के सामने पूरे गांव का चित्र समाया होता। वे दुखियों की पीड़ा समेटने को व्यग्र रहते, सुझाव देते, शऊर बताते। सरल इतने कि हर काम में, हर एक की जवान में पाण्डे काका का नाम बरबस आ जाता।

नन्हें कचेहरी से नहीं लौटा, भैंस कौन दुहेगा...? पाण्डे काका हाजिर। आंगन में बैठी पंगत को कौन जिमाए...? पाण्डे काका हाजिर। कड़ाह जल रहा है..., पूड़ियां पहुंच नहीं रही हैं... पाण्डे काका की ललकार पर बेलने वालों का

झुण्ड उमड़ पड़ता। पंजीरी बांटने, शरबत पिलाने, भीड़ संभालने, समाज को साधने में पाण्डे काका की याद आना स्वाभाविक है।

बरात जनवासे पर..., चारपाई नदारद..., बराती तुनक रहे हैं..., कोस रहे हैं..., गुबार निकाल रहे हैं। पाण्डे काका की गुहार पर एक आदमी पीछे दो चारपाई का सरंजाम तैयार होते देर नहीं लगी। दुश्मन की इज्जत को भी बचाने और बढ़ाने की धुन समेटे पाण्डे काका के व्यक्तित्व पर बैजेपुर गांव को नाज है। उन्हें पाकर वह धन्य हैं, सुखी है और गदगद है।❏

गया बाबा

ओले किस दिन पड़े थे... लाठी कब चली थी... मुखिया के पिता कब गुजरे थे... वह कुएं में कब गिरी थी... फलाना पेड़ पर कब लटका था... उसकी रजिस्ट्री कितने में हुई...गांव में कितनी परती जमीन है... बंदोबस्त कैसा हुआ था... कतिकहिया (इन्फ्लूएंजा) बीमारी किन-किन को समेट ले गई... उसके यहां सेंध कब और कैसे लगी...? आदि गांव की अच्छी-बुरी अनेक चर्चाओं का संक्षिप्त-सही रिकार्ड आपको गया बाबा के यहां मिल जाता था।

ठिगने कद के, रंगीली तबीयत के, बैठकबाज, सभा-चातुर्य बाबा को गांव में बसे ज्यादा अरसा नहीं हुआ, पर वे गांव में दूध और पानी की तरह घुल मिल गए थे। बड़े भाई काशी के पाधा थे। रईसों का रहन-सहन था। अनुज पर कृपा दृष्टि थी। गांव-नगर दोनों का तालमेल था। मजे की कटती थी।

चौपाल खाली न रहती, सुरती मलते रहते, सरौता चलता रहता, आने जाने वालों का तांता लगा रहता, गांव का ऐसा कौन पहलू है जिस पर वहां चर्चा न होती। स्टेशन बाजार मेला जाने व आने वाले बाबा के चबूतरे पर बैठे लोगों की निगाह में होते। गांव का सारा राज, समस्त रहस्य, उजली-काली... सभी बातें वहां प्रकट होकर रहतीं। गांव पर खोज करने वाले, गांव की नाड़ी भापने वालों को बाबा की चौपाल बड़ा सहारा देती।

बाबा सब के सगे थे, बच्चों से दोस्ती थी, युवकों से प्रेम था, बूढ़ों से राम जोहार थी। लोहार, तेली, बनिया, भुंजवा, सुनार, नाऊ, हरवाह, चरवाहे सभी उनकी मसली सुरती का फांका लगाने को लालायित रहते।

रंग बेचने वाले, हींग विक्रेता, तेल-फुलेल, साग-फल गांव में कोई फेरी वाला ऐसा नहीं जो बाबा के चबूतरे से न गुजरे। बाबा की मीठी बातें, व्यावहारिक बुद्धि, सुरती और ठंडे पानी में वह तासीर है कि बाबा को अच्छी चीज वाजिद दाम घर बैठे सुलभ हो जाती। लोन, तेल, गुड़ से लेकर सोने-चांदी के रोज-रोज के भाव आप बाबा से पूछिए। मूल नक्षत्र, पाचक, भद्रा, दिशाशूल पूछिए। मुकदमा लड़ना है, सौदा खरीदना है, गंगा नहाना है, भंडारा कराना है, बाबा से सलाह लीजिए। दुबे, पांडे, पाठक, ठाकुर सभी की गोल में बाबा शामिल हैं। वे गांव के मेहमान हैं।

गया बाबा के बाद गांव का मुंह देखने वालों ने रियासतें बना लीं, पर बाबा ने इसे फजीहत समझा। बिना चहला में पैर साने उन्हें बढ़िया चावल खाने को मिलता। पंडिताई, ब्याज, सवाई, ड्योढी, बाबा नर्मदा की पूंजी, भाई की मदद, भोजन की कमी न होने देती। गांव भर से पहले हाथ-मुंह धो, पेट पर हाथ फेर चौपाल पर बैठ जाते।

सुस्ताने वाले, मनोरंजन चाहने वाले, गप्प हांकने वाले, चुगली-चाटी, निंदा-स्तुति से खाना पचाने वाले वहां जमे ही रहते। शतरंज होती, ताश फेटे जाते, कहकहे लगते, ठंडाई छनती, चांदनी बखरी रहती, दरबार लगा रहता...। जाड़े में अलाव होता और वहीं किस्सा लतीफा भी।

बाबा में गजब का आकर्षण था। उनके सब दोस्त थे, सब उनसे अपना

दुखड़ा रोते, बहुओं के सास के अत्याचार, सांसों से बहुओं के नखरे सुनते, लड़के बाप की धौंस और बाप अपने सपूत की मटरगश्ती बखानते। महाजन, कर्जदार, दुकानदार, ग्राहक, किसान हरवाह, मुद्दई और मुद्दालेह सभी उनसे अपनी विपदा कहकर बोध पाते।

गजब का धैर्य था उनमें। सुनने का नशा था। लोगों का दुखड़ा सुन उसे दिलासा दिलाने वाले महात्मा थे वह। प्रोत्साहन का जादू बिखेरने वाले कलाकार थे। आशा और भरोसा दिलाने वाले योगी थे।

वे सामाजिक कार्यकर्ता थे। मिलनसार, उदार, हंसमुख स्वभाव ने उन्हें चमका दिया। गांव उनके साथ था और वह गांव के थे।

उनकी संग्रह प्रवृत्ति अजीब थी। दवाइयों की सूची के पत्र, पुराने अखबार, बीसों वर्ष की चिट्ठियां, पुराने सिक्के, टिकट, सैकड़ों वर्षो के पंचांग और पुरानी बहियां, जड़ी बूटी की पुस्तकें, आल्हा-नौटंकी, कजली, फाग, त्यौहार व्रत कथा, ज्योतिष, चंद्रकांता संतति, भूतनाथ, शीघ्रबोध होरा चक्र की पुस्तकें उनके पास होतीं।

गुड़, पुराना घी, कालरा मिक्सचर, अमृतधारा, प्रमेह की दवा, सांप बिच्छू की दवा, पाढ़ी, रुद्राक्ष, भोजपत्र, अनार की कलम आदि सभी कुछ उनकी अलमारी में सुरक्षित होता।

चलतू भाषा में वे हरफनमौला थे। किसी चीज की जरूरत हो पहला नाम उन्हीं का आता। जाजिम, गलीचा, कढ़ाहा, पालकी, अमकट, सेवई बनाने की मशीन, गुझिया गुठने की गुठली, पिचकारी, सूजा, पेचकस सभी मिलेगा।

बाबा की चौपाल मसे भीगते युवकों का प्रशिक्षण केंद्र थी। वहीं से वे दुनियादारी सीखते, गांव को परखने, उसके दांवपेच से बचने का शऊर पाते, बाबा सब की नस नस से परिचित थे। खरा-खोटा समझते थे, बैठक बाजी के गुर से अभिज्ञ थे, बैठक बाजी में भी ज्ञात-अज्ञात कहां से 'हुन' आ बरसता है, इससे वे अछूते न थे।

नट आया हो या मदारी, जादूगर हो या व्यास, गया बाबा की शरण उसका

बेड़ा पार लगा देती। बरगद वाले हनुमान जी का श्रृंगार करने में बाबा अपना कौशल दिखाते। हवन, कन्या भोज, संगीत-कीर्तन आदि में रेशमी धोती पहने, दुपट्टा ओढ़े, रोली लगाए बाबा रामजानकी के दाहिने हाथ होते।

गांधी की पुकार में इंकलाब की लहर फैलाने में बाबा किसी से पीछे नहीं रहे। सत्याग्रहियों को प्रेरणा देने, मीटिंगों में भाग लेते और गांव का नाम उजागर करते।

*   *   *

मृदुभाषी बाबा ने अपने दरवाजे की मर्यादा निभाने में कमी नहीं रखी, सबकी सुनते और सभी बातों को मन के उस कोने में डाल देते, जहां से निकलना आसान नहीं। किस सांचे में ढले हैं, किस धातु के बने हैं, इसे कोई बता नहीं सकता। सब का रहस्य जानने वाले बाबा स्वयं रहस्यपूर्ण बने रहे।

बाप की छाया मिटते ही भाई-भौजाई ने उन्हें संभाला। भाई-भोजाई के बिछड़ने पर बाबा के शरीर को घुन लग गया। भाई ने जैसा निबाहा, भौजाई ने जैसा दुलराया, याद कर बाबा रो पड़ते। भतीजे के पड़ोसी बनने पर वे उठे सेरों की जगह छटाकों की बिक्री देख बाबा का आर्थिक ढांचा लड़खड़ा उठा।

मोटे गद्दे पर सोने वाले, महकते चावल की खीर उड़ाने वाले बाबा को अब राम से पाला पड़ा।

कहीं गठिया, कहीं फोड़ा, शरीर सूखा, रोगों ने डेरा डाला, बैठक फीकी पड़ गई, चौपाल से चहल-पहल मिट गई, अब तो कोई भूले भटके भले खोज ले ले..., बाबा का दिल रो पड़ा।

सबकी मृत्यु तिथि बही में टीपने वाले बाबा के 'आत्माराम' ने सबके सामने पिंजरा खाली कर दिया।❑

जोखई

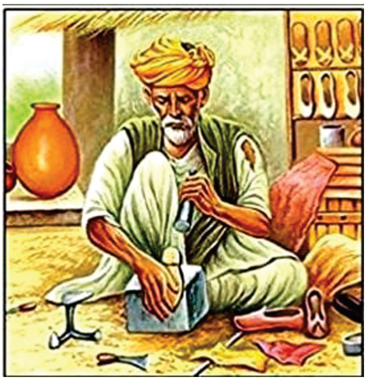

जमाने की हवा बदलती रही... संसार चक्र घूमता रहा... गुलाम देश ने अगड़ाई ली... स्वतन्त्रता का विहान हुआ... पर जोखई की दिनचर्या में, उसके कार्य कलाप में, रत्ती भर अन्तर नहीं पड़ा।

जब से सुधि संभाली इस बखरी के प्रति वफादार बना रहा, सरकारें बदली, बखरी के मालिक बदले पर आज भी मुंह अधियारे से दिन ढलते तक मालिक की ताबेदारी में वह रत रहता। सत्तर वर्षीय जोखई का सेवा काल पचास वर्ष से ऊपर हो चला। वही पाँच पाव (लगभग 2 सेर अन्न) और मुट्ठी भर चबेना उसकी रोज की मजदूरी है।

कुआर में पाँच-छः दिन जाड़ा देकर जूड़ी आ जाना, अरहर के खुरेंटा लग जाने पर फोड़ा फुंसी हो जाना, कभी दाद और कभी खुजली के सिवा अन्य

किसी बीमारी से पाला नहीं पड़ा।

मालिक की मौजूदगी में वह बैलों को खड़ा कर सुरती मलेगा... देह मरोड़ेगा... पर उनके न रहने पर वह बराबर बैलों को ललकारता, पूंछ मरोड़ता, पैंगा नचाता, धरती चीरने में जुटा रहता। नये नाटों को जोतू बनाने, धरती तोड़ने, कुश का झाड़ झंखर साफ करने में उसे कमाल था। दुगड़ा चलाने, मेड़ बाधने में उसे कोई पा नहीं सका। उसकी सानी रौंदी मटियारी मिट्टी की दीवाल लोहे का मुकाबला करती है।

जोखई के पिता ने बखरी से चार धरा चावल, चार धरा गुजई और बारह धरा गेहूँ तथा पचास रूपया नकद लेकर उसका ब्याह रचाया था। नाच, दावत, गहना, पूजा सभी कुछ उसमें हुआ था। 'दाम दूगुन - अनाज तिगुन' के हिसाब से बढ़ते ऋण ने जोखई को बंधुवा बना दिया। उससे उबरने की कल्पना तक करना पाप है। वह भूमिहीन, सर्वहारा खेतिहर मजदूर उस देश की धरती का प्राणी है जहां सन्तोष और धीरज का पाठ जन्मघुँटी के साथ मिला था।

सुरती छोड़ जोखई में कोई व्यसन नहीं, मेहनत से मुंह मोड़ा नहीं, वह और उसकी पत्नी धुरमुण्डी दोनों किसानी के हर काम में माहिर है। औकात भर उसकी गृहस्थी भरपूर है, जोखई को गर्व है कि उसके यहां चार-छः मेहमानों को खिलाने का सरंजाम हरदम बना रहता है। जोखई के यहां एक दो बकरी और उसके बच्चे बने रहते है जिन्हें वह कच्चा सोना बताता है।

छोटा घर पर साफ सुथरा, गैंदे और तुलसी के बिरवा भी हैं। हर साल बड़ा घूर इकट्ठा होता उसी के पैसे से तेल-नमक-सुर्ती का खर्च चलता। होली का त्यौहार उमंग से मनाना कोई जोखई से सीखे। फागुन की मस्ती का क्या कहना? बसन्त पंचमी से ही फाग टेरने लगता है। बरस-बरस की होली तापेगा, राख लगायेगा, पूड़ी-कचौड़ी-सोंठ गुड़ की गुझिया और न जाने क्या-क्या बनवायेगा। एक लोटा भांग भी ढकेलेगा - बमरौटी में घूम-घूम कर सबको बन्दर बनायेगा और अपनी मुंछे और बरौनियों को भी लाल कर लेगा।

मैहर की शारदा मैया की गुहार लगाना ही उसका तप है - वह ओझाई भी करता है, लोग घेरे ही रहते हैं। इतवार-मंगल फूँक डलवाने औरतों को भीड़

लग जाती है। जंभुआता है, जमीन पर लकीर खींचता है, भभूत देता है और दो लौंग का उतारा भी देता।

ठीक दोपहरी गड़ही में नहा कर, सूरज के सामने एक लोटा जल गिरा कर, भगवान का दिया हुआ पेट में डालता है। पना के लिये आम बगीचे से पा जाता। बरसात में उसका छप्पर लौकी-सेम-तरोई से भरा रहता - गरम पनेथी में पानी के साथ नमक-मिर्च चुपड़ खाने के स्वाद का क्या पूंछना?

गांव की बहु बेटियों की डोली उठाने, चमड़ा कमाने, झबुआ खांची बनाने, चारपाई बुनने, छप्पर छाने, दीवाल उठाने आदि के बीसों काम उसे घेरे रहते हैं। काम करते ही जीना उसका व्रत है, खाली बैठना उसे गुनाह है। रात में कहानी सुनाने का नशा है। बठई, सगई, शुकरू सभी जोखई दादा की परियों की कहानी सुनते-सुनते कल्पना की उस उड़ान पर जा पहुंचते हैं जहां - यहां का दुःख-दैन्य, कष्ट और अभाव सब भूल जाता है। आसमान के तारे गवाह होते, चांदनी बगरी रहती और भगवान का नाम ले जोखई अपनी भीनी खटुलिया पर लुढ़क खुर्राटे भरने लगता।❑

ओझाईन अइया

ओझाईन अइया को पूरा गांव मानता था। खलिहान में राशि (अनाज) सीझते ही पांच अंजुरी दाना उनकी पिछौरी में डालना हर एक अपना शगुन मानता था। राखी के दिन भिनसारे से सांझ तक अइया को राखी बांधते ही बीतता। आशीषों की पोटली उनके पास रहती। सुहाग बना रहे..., कोख भरी रहे..., बड़ाका हो या ब्याह हो आदि ढेरों आशीष देने वाली ओझाइन पूरे गांव की पुरखिन थीं। बहुएं उनका लिहाज करतीं..., सासें उनसे ठिठोली करतीं..., वे वृद्धाओं की ननद, प्रौढ़ों की बुआ और बच्चों की आजी थीं, पर सब उन्हें अइया ही कहते।

ओझा जी का जमाना था। कुठले भरे रहते, घी-दूध, फल-फूल किसी की कोताही नहीं थी। पांच भाइयों का परिवार एक मुट्ठी में बधां था। घोघापुर में

ओझा परिवार की धाक जमी थी। ओझा किसानी में दिन-रात एक कर देते, उनका खेत सधा रहे, डांड के खेत में पैदावार कम न हो, यह धुन समाई रहती। ओझा मशक्कत में कमी न करते।

मूसलाधार वर्षा हो रही है, हाँथ को हाँथ न सूझता, भादों की एक रात..., 'आलस नींद किसानी नासै...' के हिमायती ओझा खेत का पानी निकालने में जुटे थे। पैर में किसी ने काटा..., झटका दिया..., एक चीख हुई..., गांव लालटेन ले दौड़ पड़ा। कर्मयोगी ओझा अचेत पड़े थे..., हाथों-हाथ चौपाल लाये गये..., मन को समझाने के लिए झाड़-फूँक हुई..., पर जो होना था- हो चुका था। ओझा सात वर्षीय एकलौते पुत्र जगदीश को छोड़ सदा के लिए चले गए।

भाई-भौजाई ने आंखें फेरना शुरू कर दिया। नियत में फर्क पड़ा..., बरकत कम हुई..., भरा-पूरा घर बिखरने लगा..., अकाल-सूखा-बीमारी-मुक़दमा ने घर की रौनक नष्ट कर दी। ओझाईन ने हवा का रुख परखा, बदलती निगाहें देखीं, देवर-भतीजों के आश्रय को लात मारी और मायके में भी मां, भाई -भौजाई की रोटी में साझा नहीं किया। स्वाभिमानी एकमात्र 'जगदीश' के सहारे अपने जगदीश को पालने लगी।

मारकीन की धोती पहनने वाली, सादगी पसंद ओझाईन ने जगदीश को संस्कृत का पंडित बनाया..., देश-समाज की सेवा का मंत्र दिया... और जीते जी अपने मीठे स्वभाव से गांव की पुरखिन बनी रहीं। बहू बेटियों को शऊर सिखाना, दिलासा देना, हिम्मत बंधाना उनका काम था। उनका बनाया अंजन दुखती आंखों के लिए रामबाण था। वह मोटा-झोटा खातीं, पर जगदीश को चुपड़ी और मुलायम रोटी ही खिलातीं। पूरे गांव में जिसकी पैठ हो... उसे अचार-दही, बड़ी-मुगौड़ी की कमी कहां ? ओझाइन ने जगदीश को आटे-दाल के भाव का पता नहीं लगने दिया।

गांधी की आंधी में जगदीश अपने को संभाल नहीं सके। मसें भीग रही थी, 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे गूंज रहे थे, मां के दूध से ही आजादी का पाठ सीखने वाले युवा जगदीश को जेल की रोटियों ने क्रांति का संदेश दिया। मां ने

गर्व का अनुभव किया...। वे चरखा काततीं, अपनी समझ, अपनी जानकारी भर बहू-बेटियों को अंग्रेजों की मक्कारी, देश की आन-बान, गांधी की पुकार बताती और उन्होंने राष्ट्र को अपना बेटा सौंप दिया।

भारत छोड़ो की गूंज से गांव अछूता नहीं रहा। उफान-जोश का उमड़ पड़ा..., खद्दरधारी बीन-बीन कर जेलों में ठूसे जाने लगे...। जगदीश को चैन नहीं, गांधी का संदेश 'करो या मरो' कोने-कोने पहुंचाने वाले जगदीश को मरणसैया पर पड़ी मां को देखने की फुर्सत कहां... ?

* * *

ओझाइन बेसुध कराह रही है..., बीच-बीच में 'जगदीश-जगदीश' पुकार उठती है..., जगदीश को देखते ही निहाल हो उठी..., सिर पर हाथ फेरा..., आंसू टपके..., धंसी आंखों ने कुछ कहा...। जगदीश ने मां की पीड़ा और साध को समझा, अपने निश्चय को दुहराया, मां को विश्वास दिलाया कि तुम्हारा जगदीश धोखा नहीं देगा। आजीवन ब्रह्मचारी वह देश और समाज की सेवा में अपने को होम कर देगा।

'जगदीश गृहस्थी बसा ले' की साध लिए ओझाइन चलती बनीं। जगदीश ने आज अपने को अनाथ समझा। ...ग्राम पंचायत के मंत्री के रूप में जगदीश ने गांव की बहबूदी बढ़ाने में कोई कसर न की। जिस गांव ने मां-बेटे का प्रतिपाल किया उसके प्रति वफादारी निभाना ही जगदीश का लक्ष्य बन गया। राजनैतिक पीड़ित पेंशन प्राप्त ओझा जी आज भी अपने गांव के सभासद के रूप में संतुलन बनाए हुए हैं। उन्हें 'न ऊधो से लेना है, न माधव को देना है'। उनके सब सगे हैं। वह खरी बात कहेंगे। लल्लो-चप्पो से दूर ओझा जी न्याय करने में कमाल रखते हैं।

कहते हैं ओझा जी का बैंक बैलेंस भी है। लोगों में चर्चा है ओझा जी अपनी आदर्श जननी ओझाइन अइया की स्मृति में गांव के लिए कोई ठोस कार्य करने की योजना में लगे हुए हैं।❑

बबउनू नाऊ

कथा हो या विवाह, मूलशान्ति हो या जनेऊ, तिलक हो या तेरही, पंडित राम प्यारे के साथ बबनू नाऊ जरूर दिखाई पडेंगे। कहा भी है- 'जहां गंगा वहां हाऊ-जहां बांभन वहां नाऊ।'

अमीर गरीब सभी का काम निपटाने वाले बबउनू के दिल में मैल नहीं, उन्होंने किसी का बुरा नहीं चेता और सबके प्यारे बने रहे।

हाथ कांपते थे, सूझता भी नहीं था, फिर भी शारदा मैया का सुमिरन कर बड़े से बड़े फोंडों में पलक मारते ही नस्तर कर देते थे। मातायें घबड़ातीं, पिता मुंह मोड़ लेते..., पर बबउनू का उस्तरा रोते बच्चे के फोड़े से मवाद की धार बहा देता।

बबउनू ने लम्बी उम्र पाई, जीवन के अनेक उतार चढ़ाव देखे, समय

कुसमय, अकाल, महामारी, भूचाल, बाढ़, पत्थर सभी झेला, कसाले सहे, मीठे और कड़ुवे घूंट पिये। अपनी साधना में लीन, धुन के पक्के, गांव सेवा में ब्रती बबऊनू का व्यक्तित्व अनोखा था। वे सबके थे, सब उनके थे।

गांव की सयानी कन्याओं के योग्य वर ढूंढ़ने में उनकी सलाह ली जाती। उनकी पैनी निगाह सब भांप लेती। फिर क्या था दो कुलों और दो आत्माओं के मिलन की गांठ लगते देर न लगती।

चार पांच कोस की गोइड़ समझने वाले नाऊ दादा शुकवा (शुक्र तारा) उगते ही चल कर दोपहर का भोजन गन्तव्य स्थान पर ही करते। मसें भीगती उम्र में तीतर लड़ाने, ललका लंगोट कंधे पर रख, दंगल जीतने का भी शौक उन्हें था। सावन की रिमझिम में गला फाड़ कर आल्हा टेरने से बाज न आते।

बारह वर्ष लौ कूकर जीवै, तेरह लौ जिये सियार।

वर्ष अठारह छत्री जीवे, आगे जीवन को धिक्कार ।।

फसल कटने पर किसान बुलाकर उन्हें उनका हक दे देते। साल मजे से कट जाता, एक हल की खेती बना ली थी। जवान बेटे थे, पोते थे-भरा पूरा घर था। नाती-पोतों के भी बेटों को उन्होने पुचकारा और मौर बांधते देखा।

पंडित तो पोथी के पन्ने पलटने और गुनगुनाने में रहते। विवाह जनेऊ की सारी क्रियायें बबऊनू ही विधि-विधान से सम्पन्न कराते। बड़े-बड़े भण्डारों को उन्होंने अपने दम पर संभाला, दोना-पत्तल जुटाने में चौकस रहते। उनका रोब सभी मानते, औरतें लिहाज करती, मनचले छोंकरों को डांट बताने में वे कभी हिचकते नहीं। गांव की शान, उसकी इज्जत रखने में वे सदा आगे रहते। गांव की बिटिया को घूरने वाले की आँख निकालने का दम रखने वाले बबऊनू के ऊपर पूरा गांव निहाल था।

सहालगों में उन्हें दम मारने, कमर सीधी करने का भी अवकाश न मिलता। पूरा गांव उनकी जजमानी के दायरें में था। बेचारे को ब्राह्मण, गड़रिया, अहीर, सुनार, बनिया, तेली, भुजवां सभी का काम साधना पड़ता था। बंगला

(अंग्रेजी कटिंग) कटाने वाले उनसे कतराते थें। मशीन चलाई नहीं, नये फैशन से दूर नयी चटक मटक से कोसों दूर रहने वाले नाऊ दादा को छोटे-बड़े सभी की हजामत का ध्यान रखना पड़ता। कैसा भी कांटा चुभा हो, खुरखुरा कर निकाल देते। सैकड़ों रोगों के अजीब-गरीब नुस्खे कंठस्थ थे। सर्जरी में उस्ताद थे।

कुल्ला दातून खरमिटा (सुबह का जलपान) कर अपने बगुचे के साथ निकल पड़ते। चौपाल द्वार खेत-खरिहान बाग-बगीचा सभी जगह सभी दिन उन्हें जाना पड़ता। वे सबकी सुनते पर मजाल नहीं कि उनके मुंह से कोई गलत बात निकल जाय।

एक पैर से गांव का चक्कर लगा आते, बुलावा दे आते, बिगड़ी को बना लेते और जजमान की प्रतिष्ठा रखने में कुछ उठा न रखते, ऐसे थे बबनू नाऊ।

गरीबों के पास दादा को नेग देने की समाई भले न हो, पर उसके काम में कसर न आने पाती। मुखिया और महाजन के साथ वे मंगरू और धुरहू का भी ताव संभालने का दम रखते थे। उन्हें कमी कहां थी। घर बरतनों से भरा था। कुठिलों में अनाज पड़ा रहता, रेजगारी गंजी (इकट्ठा) रहती, दुधारू भैंस, खूंटे पर झूमा करती। बेटे पोते खेल खरिहान में जुटे रहते नियत साफ थी, बरक्कत भरपूर थी। बहू-बेटियों से आंगन भरा था, लखनवा, सखनवा की महतारी भी घर भीतर काम समेटने में जुटी रहती।

*　　　　*　　　　*

दादा ने बुढ़ापे में शहराती मेहमानों से नगर के सैलून की चर्चा सुनी, बदलती दुनियां के तराने सुने, छल फरेब सुने पर सबसे अपने को अछूता रखा। वे गांव की धरती में जिस मिठास को लेकर जन्में पले-बढ़े थे उसी मिठास के साथ सबकी हमदर्दी समेटे, सबका आशीष लेते एक दिन चार कन्धों पर चलते बने।

*　　　　*　　　　*

विक्टोरिया से इन्दिरा गांधी तक के शासन में रहने वाले बबउनू ने गांधी की उड़ती आंधी, 42 का मचलता आन्दोलन, जमींदार का आतंक, भूमिधारी का ठाट, 'जय जवान - जय किसान' की गूंज देखी और सुनी। बदलते गांव की फिजां का अवलोकन, चुनाव की सरगरमी देखी, कतार में लगकर दादा ने तीन बार बैलों की जोड़ी को जिताया भी पर बबउनू दादा का भावुक अन्तस तृप्त न हुआ। गांव के बदलते स्वर उन्हें चुभते रहे। फागुन की मस्ती और फाग की टेर फीकी लगी।

* * *

उनके देखते देखते जमीन का चप्पा-चप्पा जुत गया, ढोर खडे होने को तरस गये। गांव की तिकड़म से जी खट्टा हो गया। वह बहबूदी ठहाका मार हंसी, वह सीना तान चाल, वह अपनापन वह ईमानदारी, वह दिलेरी, वह मर्दानगी सब मिट गयी। अखाड़े के जवानों की जगह लोफरों की बाढ़ ने दादा को जर्जर कर दिया।

गांव को मनहूसियत ने घर को भी डसा और घर का बंधा गुलदस्ता बिखर गया, कुठले रीते हो गये-बच्चे दही माठा को तरसने लगे-बबउनू को अपने से ही घृणा हो गयी। उठते-बैठते गुहार करने लगे-आखिर भगवान ने उन्हें बुला ही लिया पर गांव आज भी उनकी याद में सिसक रहा है।❑

कृपा भाई

दोहरा गठा सांवला शरीर, चेहरे पर तेज, कर्मठता की प्रतिमूर्ति कृपा भाई वसन्ती पुरवा की शान थे। चौपाल और चबूतरे पर उनके कहकहे, उनकी सूक्तियां, उनकी गम्भीर अनुभव से सनी बोली, रईसी की बू, स्वाभिमान की ठसक अब कहाँ नसीब है?

वे बहुश्रुत थे, मानस के मर्मज्ञ थे, हर मौसम के लिए मानस की चौपाईयां उन्हें सहारा देतीं। वे उसे गुनगुनाये बिना न रहते। अकेले मानस ने उन्हें सभा-चातुर्य, भाषा-मर्मज्ञ, पण्डित और कुशल नेता बना दिया था।

उन्हें चराना आसान नहीं था। चलते पुर्जों की बधिया उघाड़ने का उन्हें कमाल था। नहले पे दहला जमाना खूब जानते थे। प्राइमरी पढ़े कृपा की बुद्धि, उनकी प्रतिउत्पन्नमतित्व का, उनकी चातुरी का लोहा सभी मानते थे। उनकी

दिल्लगी से मझियारी वाले मात खा जाते थे।

वे सफल गृहस्थ, सहृदय बंधु, विश्वसनीय नेता और सही मार्गदर्शक थे। बाबा जयकरन के झंडे को, उनकी नामवरी को कायम रखने में उन्होंने कुछ उठा न रखा। भाई विलाल और कृपा की जोड़ी पर पुरवा निहाल था, निश्चिंत था और सुर्खरू था। विलाल भाई अपने पर अकृपा करते हुए असमय ही चले गए। घर के सरदार, सक्षम भाई के अभाव ने कृपा को अधमरा कर दिया। पर जीवन संग्राम का थका यह मुसाफिर धूल झाड़कर उठा, पूरे जोश से उभरा और मरते दम तक अपने को उजागर रखा।

कसी लुंगी, दोहरी बण्डी, कंधे पर चार खाने को अंगोछा, लाठी दाबे कृपा भाई के व्यक्तित्व में स्वाभाविक ओज, गर्व की लालिमा, रईसी, दबंग समाया था। उस मनस्वी ने अभावों और कष्टों के बीच भी मुस्करातें हुए, शान के साथ, जीने का व्रत निभाया था। वे उस सांचे में ढले थे जिसे तोड़ना सहज नहीं। उनमें आस्था का वह रंग जमा था जिसे मिटाना आसान नहीं।

नीम की छाँव तले, चबूतरे की मचिया पर अंगोछे का सहारा लेकर बैठने वाले कृपा भाई अपने को किसी राजा से कम हैसियत का नहीं मानते थे। क्या नहीं था? ऊँचा चबूतरा, खम्भेदार बैठक, चरनी पर मस्ताने बैल, पहाड़ सरीखी भैंसे, दुधारू गाय, रंभाते लेरूआ, काम करते मजदूर, आंखों के आगे हरा-भरा सिमार, घर में कुशल वफादार गृहिणी, प्यारे लुभावने गोल मटोल किलकारते बच्चे, साधु के स्वभाव के राम जी पिता, काम में लगी मां, परिवार में वरदहस्त रखने वाले सन्त चाचा और क्या चाहिए? मान-प्यार में कोई कमी भी नहीं। होली उन्हें रंगीन बना देती, दिल खोलकर फगुआ गाते और रंग-अबीर में खो जाते। अखाड़े की माटी पोतने का भी शौक था उन्हें।

कृपा बात को तोलकर कहते। नीति छोड़ी नहीं, धर्म त्यागा नहीं, किसी का बुरा चेता नहीं, बड़प्पन गवांया नहीं, गरिमा भुलाई नहीं। वे अपने लक्ष्य के प्रति सजग थे, मर्यादा के रखवाले थे, बात के पक्के थे और थे काम में चौकस। उनकी निगाह में सफलता का एकमात्र मार्ग कठोर श्रम और थी धर्म में दृढ़ आस्था।

बिना शरबत पिये उनके द्वार से निकल जाना आसान नहीं था। वह सांझ अभागी मानी जाती थी जिसमें कोई मेहमान न रूका हो। सुरती-सुपारी के व्यवहार में कोई विराम नहीं पड़ा।

विवेक चूड़ामणि, उत्तरकांड का ज्ञानमार्ग वहां जम चुका था। तपस्वी महाराज की भक्ति भी घुटने टेक चुकी थी। गर्मी की दुपहरिया, जाड़े की लंबी रातें, स्वार्थ और परमार्थ, पाप और पुण्य, जीव और आत्मा, संसार और मोक्ष की चर्चाओं में बीत जाती। चौपाल में रामायण, महाभारत और आल्हा अपनी बारी से रंग जमाये रहते। कृपा भाई का तन्मयता से रामायण पाठ श्रोताओं को आत्मविस्मृत कर देता। उनकी मेधाशक्ति विलक्षण थी। उनकी बोली में गम्भीरता साथ ही विनोद-प्रियता और हास्यपुट, हर बात में कुछ कहने और देने की प्रेरक शक्ति।

परसरा के तिलक, कथा-मटमंगरा में कृपा भाई पहुँच गए, मानों पूरी वसन्ती पहुँच गयी। ग्रामीण अर्थशास्त्र के वे पण्डित थे। शऊर सिखाने की कला से भिज्ञ थे। युवकों को बढ़ावा देने का नशा था। वे अच्छे श्रोता थे, बातों से रस लेने वाले रसज्ञ थे, उनमें नीर-क्षीर का विवेक था, गहराई पर पहुँचने का माद्दा था। उनकी परख सच्ची थी, उड़ती चिड़िया को पहचानने में माहिर थे। बाप, भाई, चाचा पड़ोसी सभी उनकी राय की कद्र करते। उनका लिहाज रखते और उन्हें अपना अगुआ मानते। उनका विश्वास था कि परिवार का प्रबंध एक बुद्धिशील राजा के प्रबंध की भांति चलता है, एक प्रजातंत्रात्मक प्रधानमंत्री के प्रबंध की भांति नहीं।

कृपा भाई ने देश की आजादी पर मर मिटने वालों का हौंसला बढ़ाने में कंजूसी नहीं की। उन्होंने 'सिर जाये तो जाये पर हिन्द आजादी पाये' गीत कभी टेरा था। उन्होंने आजादी का प्रभात देखा, दूसरे महायुद्ध की गिरावट को भी महसूस किया। जो झेला, जो भोगा है, उसका दर्द वे ही जानते हैं।

* * *

भाई विलाल के जाते ही उनकी निर्द्वन्दता, उनकी मस्ती, उनकी निश्चिन्तता पर पाला पड़ गया। वे अपने भाई के गम को भुला नहीं सके। उनका

दिल बैठ गया, वे उदासीन रहने लगे, अपने से भी और संसार से भी। 'मरने के बाद क्या होता है' की जिज्ञासा में कृपा ने क्या नहीं पढ़ा, क्या नहीं गुना, क्या नहीं सुना, क्या नहीं समझा? रिक्तता भर न सकी, जीवट जुटा नहीं सके, साहस आंख-मिचौनी करता रहा। तारा पर बरगद के नीचे हनुमानजी की मठिया में गिड़गिड़ाने वाले, आत्मविभोर होने वाले कृपा सुध बुध खोये पड़े रहते।

वसन्ती के हीरा-मोती भाई विलाल और कृपा में जीवट था, साहस था पर बुढ़ापा झेलने का मनोबल न था। बीमारी ने चुपके से प्रवेश किया और मौका पा जम बैठी। कृपा ने दुनिया का सहारा छोड़ा, भगवान को पकड़ा। एकमात्र भगवत्कृपा पर हमारे कृपा भाई निर्भर हो गए। क्रम चलता रहा, दिन सरकते गए...।❑

लंगड़ तिवारी

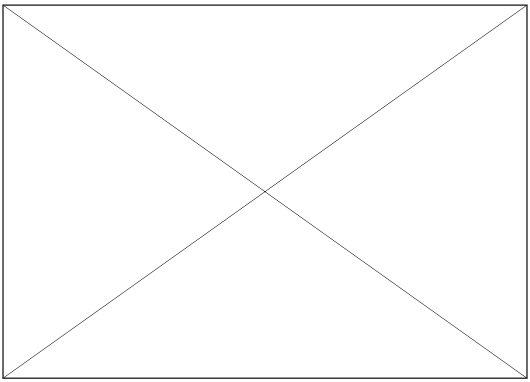

मड़ैया के नीचे रामायण की कंठस्थ चौपाईयों को टेरते रहने वाले तिवारी जी की दुकान में गांव की रोजमर्रा जरूरत की सभी चीजें आसानी से मिल जाती हैं। गांव में उठते बैठते गुड़ खाने और खिलाने का रिवाज है। खाने और पीने वाली तम्बाकू, सुपारी, खैर(कत्था), छुट्टा और बंधी, लाई नोन, तेजपात, धनिया, मिर्चा और फसल पर आलू तथा शकरकंद यही सामान पैसे के बजाय अनाज के विनिमय से दिन रात बिका करता था।

मिट्टी की गगरियों में गुड़ - नौन - लाई, तराजू और बांट के आस पास अनाजों के ढ़ेर, कुवार कार्तिक में धान, अगहन पूस में बाजरा-ज्वार, चैत बैसाख में चना-बेरा, लाही देखने को मिलता था।

तिवारी लंगड़ परमहंस थे। नंगी देह, तन पर एक चौकट (मैला वस्त्र) लपेटे, हाथ का तकिया बनाए चट्टान की भांति पड़े रहते थे। आवाज भारी थी, देह

भारी थी। अनाज को आधा-तिहा-चौथाई कर जल्दी-जल्दी सौदा तौल कर, ग्राहकों को देने में उस्ताद थे।

तिवारी एक घोड़ी रखते थे। उसी पर बैठ कर डेढ़ कोस के बाजार से सौदा लाते, चलने में लाचार थे, घोड़ी की पीठ पर किसी का सहारा लेके बैठे नहीं कि बाजार ही दिखाई पड़ते थे। उनकी दोनों लड़कियां पास के गांव में एक ही घर में जेठानी-देवरानी करके ब्याही थीं। वे पारी-पारी से आकर उनकी रोटी दाल बना देती, भुने आलू का भरता तिवारी को बेहद पसंद आता।

तिवारी की दुकान से सबका साबका पड़ता, खलिहान से अनाज के उठने पर बच्चों और स्त्रियों को अनाज देने का रिवाज था। चरवाहे अपनी चटोरी जबान को तृप्त करने के लिये जंगल में ही खेतों की सूखी फसल पैरों से रौंद अनाज निकाल झोली में भर लाते और तिवारी को सौंप देते। औरतें कुएं सें पानी भरने आतीं और गगरियों से भरा दाना तिवारी की तराजू में उड़ेल कर अपना खाता चालू रखतीं। ताजी उबाली हुई शकरकंद, और कड़ाही से निकली गरम बंधी लाई की महक बच्चों को अपने घर से अनाज लाने को विवश कर देती। फिर तिवारी को घेलइया (सौदा खरीदने का कमीशन) देने में पीछे न रहते।

तिवारी की चलती दुकान, उनकी आमदनी का तखमीना लगाकर कई दुकानें खुली और बन्द हुई, पर तिवारी पुराने पहलवान की तरह अखाड़े से भागें नहीं, डटे ही रहे।

अषाढ़ अष्टमी को देवी के मेले में उनके यहां भीड़ लगी रहती। सतुआ भी रखते थे भुने जीरे से गमकाया, कुआं पास में ही था। डोल, लोटा, थाली, नमक-मिर्च का सुभीता तिवारी की दुकान पर था। यात्री उन्हें घेरे ही रहते।

गंगापार से तिवारी इस गांव में कब कैसे आए? इस पर कौन माथा पचाए। तिवारी के भावुक चित्त को यदा कदा कोई हृदय ग्राहक जब कुरेदता तो बरसों का दबा गुबार बरबस निकल पड़ता। सौतेली मां के तानों से खीजे और कुढ़े तिवारी ने ससुर की छाया पकड़ी। फौजदारी में साले रामधन को बचाने में तिवारी लंगड़ हो गए। ससुराल की रोटियों की मिठास कम होते ही लंगड़ तिवारी

ने अपनी रोटी स्वयं पैदा करने का संकल्प किया और उनकी दृढ़ता ने जीवन भर साथ दिया। बरक्कत फूट पड़ी... अन्न और पैसे से तिवारी सदा भरपूर रहे।

तिवारी कब सोते है, इसका किसी को पता नहीं? रात के किसी भी पहर लोगों ने उन्हें 'सियाराम' सुमिरते ही पाया। कुत्ते की नींद सोने पर भी, दो चार साल में, एक बार उनकी संजोई पूंजी चोरों के हाथ पड़ ही जाती। तिवारी थाने रपट लिखाने, शिकवा-शिकायत से सदा दूर रहे। उनकी तकदीर उनके पास है, 'राम सबका भला करे', वे सदा अलमस्त मौला बने रहे।

तिवारी जीते हैं और जियेंगे, उनकी डबडबाई आंखों से उनके अतीत को जिन्होंने झांका है वे जानते है कि तिवारी कितना दर्द समेटे हैं। किसी की बेवफाई पर कहां तक कुढ़ें..., कहां तक अपना माथा नोचें, रामायण की चौपाईयों ने उन्हें जीने का मंत्र दिया है, उसी में उन्होंने पिता का वरदहस्त, मां की पुचकार और भाई का दुलार पाया।

'सियाराम मय सब जग जानी' समझने वाले तिवारी को अब किसी से द्वेष नहीं, ज्ञानी बाबा के चरणों पर लोट पड़ने वाला तिवारी, उनके संकेत पर अपनी बसनी खाली कर देता, उनके उपदेशों से वह तृप्त हो जाता और उनके भण्डारे का प्रसाद पा धन्य हो जाता।

गांव की किसी भी जाति की कन्या हो, उसके विवाह में सहायता करने से तिवारी पीछे न रहते। बच्चों से उनका लगाव था। गांव भर के नन्हें-मुन्नों को साल में दो बार बरगद के नीचे भर पेट पूड़ी-हलवा खिलाने का उन्हें नशा था।

उनके चार दिन के मेले वाले जीवन में क्या नहीं था। बाप-मां-भाई-बहिन-पत्नी-बेटे-बेटियां, घर-द्वार, खेत-बारी सभी पर विमाता के जादू ने उनकी दुनियां बदल दी।

*　　　*　　　*

सीताराम-सीताराम चीख पड़ने वाला तिवारी अब मोह से मुक्त है, राग उन्हें छू नहीं सकता, दुकानदारी करते हुए भी वे योगी की भांति अपनी साधना में लीन हैं।

बुढ़ापा शरीर, दम उखड़ने लगा, जी थक गया, तिवारी ने अपनी पूंजी पाठशाला की इमारत बनाने में लगा दी। **'दीन दयाल विरद संभारी, हरहु नाथ मम संकट भारी'** कहते उस मनस्वी ने एक रात प्राण त्याग दिए।

तिवारी का वह खण्डहर आज भी उनके जीवट त्याग और स्नेहिल जीवन की याद दिलाने को खड़ा है।❑

मघा के बरसे

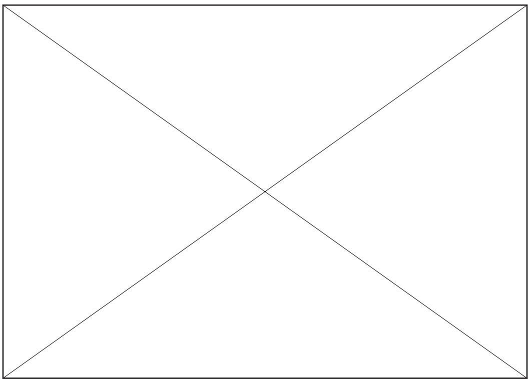

मघा नक्षत्र की मूसलाधार वर्षा हो रही है। माधो चौपाल की चारपाई पर खर्राटें भर रहा है। बिजली की कड़क, बादलों की गरज रात को भयावनी बना रही है। चारपाई पर पानी चू रहा है। दसना भीज गया। माधो ने चारपाई उत्तर की ओर खिसकाई और लेटा रहा। नींद टूट गई थी। बिजली की चमक में खिड़की से उत्तर का सिमार झलक उठता था। गुनगुना उठा - 'मघा के बरसे, माता के परसे, भूखा न मांगे फिर कुछ हर से।'

माधो को अपनी मां और उसके दुलार की याद आई। दूध का गिलास लिए मां सिरहाने खड़ी हो जाती...। जगाती..., मनौवा करती और अपने सामने ही गटागट दूध पिलाकर ही लौटती। जाउर (खीर) चला देती, मीठी लपसी बना देती, नोनवरी, गुलगुला, गोझा, चौसेला, कहने भर की देर कि बना के खिला

देती...। उसकी आंखें नम हो गई। उठा, लघुशंका की, बैलों की जोड़ी को निहारा, नींद को बुलाया - पर नींद कहां? विचारों ने जोर पकड़ा।

*　　　　　　*　　　　　　*

तेरुस के झूरा, परसाल के पनिया-अकाल ने कमर तोड़ दी, ज़ेवर के नाम पर था ही क्या ? जो कुछ था भी... वह महाजन के घर पहुँच गया। लल्लू की माँ की धोती का तकाजा है...। मैं बहुत चाहता हूं उसे रानी बनाकर रखूं। पर हाय री किसानी ! बच्चे पेटभर दाना को तरस गये। भैंस ने बहुत सहारा दिया। उसी के घी ने गांव में लाज रखी, नहीं तो कहाँ का रहता ? रही गोपाल की नौकरी, शहर का खर्च, उसी का पूरा नहीं पड़ता... कहाँ से भेजे ? अब तो चिट्ठी का जवाब तक नहीं देता। जहाँ कहीं रहे, खुशहाल रहे, कहाँ तक बेचारा इस भट्ठी को झोंके? यहां जितना आवे सब स्वाहा। उसी को इस गृहस्थी से क्या सुख पहुँचा था। अच्छा है, चैन से रोटी तो खाता है।

चार साल से चौपाल नव ठठ कराने की सोच रहा हूँ। बापू जिस साल पटहूँ पटाकर मरे, पछीति माटी लगाने को रोज़ी न हुई। ताव से पानी बरसता जाय तो खाने का टोटा न रहे। जमाने की बलिहारी..., वही धरती, वही आसमान पर पैदावार रोज घटती जाती है। खाने वाले मुंह बढ़ रहे हैं। सिंचाई के लिए, कुंआ खुदाने के लिए सरकारी तकावी मांगी पर उसमें अड़ंगे पर अड़ंगे लगते गए। बिना लिए दिए कोई कागज इस हांथ से उस हाथ नहीं करता। भगवान ही मालिक है। उस दिन सिपाही नाहक ही तो दिन भर थाने पर बिठाये रहा। अपराध कोई करे फल कोई भोगे। गांधी सुराज दे गए जरूर... पर किसान आज भी पिस रहा है।

दिन रात एक कर देने पर भी बरक्कत छूमन्तर हो गयी है। वही बाग है, बगीचा है पर आम - महुआ वह फल नहीं देते। सब में छूत सी लग गयी है।

*　　　　　　*　　　　　　*

आज झनकू की चौपाल में 'आल्हा' हो रहा था। पर सब ऊंघ रहे थे। वह मस्ती, दिलेरी कहाँ ...? ढोलक की थाप और अल्हैत के लहजे़ के साथ सुनने वालों के दिल उछलने लगते थे। इसी लंगड़ी नीम पर चार महीने झूला

उतरता नहीं था...। ओफ़ ! गुड़िया के दिन, टोले भर की मेहरारू पटरे पर बैठ जातीं, एक तरफ हम, दूसरी तरफ राधो भईया खड़े होकर जो पेंग मारते, नीम चरचराने लगती। कच्चे दिल वाली घबराने लगतीं... पर झूला अपनी मस्ती से बाज़ न आता। हे भगवान ! वह सब दिन कौन समेट ले गया !

*　　　　*　　　　*

हवा के झकोरे आ रहे हैं। पानी थम नहीं रहा। बौछारों ने लेटना दूभर कर दिया। खटिया उत्तर - दक्खिन की। भीतर से सांकल खटकी। लल्लू को चिपटाये गृहिणी ने उसांस भरी। अरे राम ! कहाँ का आसमान फाट पड़ा। देखो न, बीता भर जगह नहीं बची। तुम्हारे सोने पर तो कुम्भकर्ण मात हो जाता है।

माधो के विचार हिरन हो गए। पौला पहना, लल्लू को संभाला और तालाब बने घर को देखने लगा।

भादों रात की बारिश..., पावस ऋतु की यह बयार..., इस दंपति के लिए अभिशाप बन गई। बच्चे को लिटाकर..., दोनों को जो हाथ लगा.. थाली, लोटा उसी से भर-भर पानी उलेचने लगे। पानी ने कसम खा ली थी न बंद होने की..। बच्चा कांप रहा है.., मां का आंचल भीगा है.., अरगनी के कपड़े सिगसिगे हैं.., सभी जगह तो चू रहा है। पिछले साल का पैसा अदा न हो पाया.., कुम्हार ने खपरा नहीं दिया.., घर की फेराती जैसे की तैसी..। फिर बाप रे बाप.. ! ऐसा अंधेर का पानी.., भगवान..तुम्हीं बचाओ..।

गृहिणी ने प्रार्थना में जोड़ा..दिन में चाहें जितना बरस लो..पर रात को तो सोने दिया करो भगवान..।

भाग्यवान खर्राटे भर रहे हैं...। हम अभागे सारी रात पानी उलीचने को जन्में हैं..। गृहिणी को अपने भाई-भौजाई की याद आई... जो इन दिनों दिल्ली में डेरी के काम में पैसे के ऊपर चल रहे हैं। मुंह से निकल ही तो पड़ा - ऐसी गृहस्थी, खेती-बाड़ी के जंजाल में क्या धरा है...? मैं तो अपने बच्चे को उसके मामा के पास ही रखूंगी... वहां राजा बन के रहेगा..राजा..।

माधो गिड़गिड़ाया- ऐसा न कहो, पुरखों की जमीन जायदाद को मत

कोसो..., वही हमारी इज्जत का कवच है..., उसी के बल पर हम बेताज के बादशाह हैं...। दुःख-सुख तो लगे ही रहते हैं..इसी गृहस्थी में तुम राज करोगी...। सब दिन थोड़े ही अकाल पड़ते हैं। यह सब परीक्षा की घड़ियां हैं। हम अन्नदाता हैं, किसान हैं, दुनिया का पेट हमीं भरते हैं..., यह गर्व थोड़ा है...।

माधो ने हाथ पकड़ा..., चूड़ियां खनकीं..., छोड़ो..., हमें यह ठिठोली अच्छी नहीं लगती..; बड़े आए राजा...। देखें तो राजसी पोशाक.., कहां गया वह तार-तार हो जाने वाला वह कुरता..., पैरों में जुटा डाले राजा को कितने साल हो गए...।

पानी ऐसा थमा..., जानो बरसा हुई ही नहीं...। लेरुआ रंभाने लगा... घरनी ने लल्लू को चारपाई पर लिटाया और अधिकारपूर्वक कहा- जाकर चारा-पानी करो..., 'बगार' की बजरी दो, बाह करके फिर बोना पड़ेगा..., गाय दुह लो... लल्लू बिना दूध पिए ही सो गया था...। ❑

पंडित जी

दगमगाता चेहरा, दोहरी गठी देह, लम्बी दाढ़ी, श्वेत धवल केश, बाल ब्रह्मचारी पण्डित जी पचीसों वर्षों से इस गांव में छाये हुए हैं। ननदोई के रूप में बड़ी-बूढ़ियों को उनसे ठिठोली करने का अधिकार प्राप्त है। तेज तर्रार बहुएं भी उनसे अपनी फरियाद करने से नहीं चूकतीं।

*   *   *

50-55 वर्ष पहले किशोर पण्डितजी ने भीड़ में गांधी की जय और 'इंकलाब जिंदाबाद' बोलकर जेल की रोटियां तोड़ने का सौभाग्य हासिल किया था तभी तो रुपया-पेंशन पाकर लम्बी दाढ़ी पर हाथ फेरने वाले पण्डितजी सरकार की जयकार करने में पीछे नहीं रहते।

पैसे को दांत से पकड़ने वाले पण्डित जी हमेशा पासबुक के बढ़ते अंक

देख देख परमानंद प्राप्त करते।

कथा सुनने वाले, भोजन कराने वाले, ईंधन देने वाली गृहिणी को उनका आशीष सहज ही प्राप्त है। उनके त्याग में फर्क डालने वाला उनका शत्रु है। गांव की अच्छाई में उनका योग है और उसकी पिछड़ाहट गांव का दुर्भाग्य और उसकी नालायकी है। कौलीन्यता का गर्व उन्हें आसमान पर चढ़ाये रहता है। दुनिया में रहते हुए, गांव में रहते हुए भी इससे वे बिल्कुल अलग-थलग हैं।

इनके अपने विश्वास हैं, अपनी धारणाएं हैं, वे जिस धातु में पले हैं उससे डिगाना सहज नहीं है। गांव उन्हें पूजे, गांव उन्हें माने, देश-प्रान्त के लोग समझें कि इस ठिगने पण्डित में कितना दम खम है..., वही गांव को साधे है। अरे, नहीं तो यह गांव रसातल में चला जाता। यही गांव भले ही पण्डित जी के नाम पर दो चार आसूं बहा ले, नहीं तो मरे पीछे कोई रोने वाला नहीं है।

* * *

अच्छा, आप पण्डित जी को समझना चाहते हैं, जानना चाहते हैं कि पण्डित जी ने अपनी क्षमता का, अपनी आर्थिक स्थिति का सदुपयोग उस गांव के खातिर क्या किया ? जिस गांव में उनकी मां ने त्राण पाया, जहां उन्होंने दुलार पाया, जहां सम्मान पाया; राम भजिये, पण्डित जी को केवल उस गांव का पाजीपन और गांव की मनहूसियत ही कण्ठस्थ है।

पण्डित जी अपने काम में टंच हैं। दूसरों के लिए मरना खपना होता तो वो भी अपनी गृहस्थी बसा सकते थे। उनका पूजन, उनका स्नान-ध्यान, उनका अध्ययन-मनन, उनका व्रत-अनुष्ठान मुबारक रहे और किसी से क्या लेना देना?

आजादी के दीवाने बनने का सर्टिफिकेट उन्हें घाते में मिल गया, उसे सीने से चिपटाये हैं, वे किसी के भाग्य के ठेकेदार बनने को तैयार नहीं..., हाँ, उन्हें नाम चाहिए। काम आप करिए, आपका गांव है, आपका लाभ है, रहा कष्ट और कसाले सहना, यह उनका नहीं, आपका काम है। गांव में आग लगी है, सूखा पड़ा है, पाला गिरा है, पंडित जी से क्या मतलब? उनके 50-55 वर्ष पहले की

जेल यात्रा को आप ने भुला दिया, शर्म आनी चाहिए आपको। उनके ऊपर तरस खाइए, यही उनकी भलमनसाहत है। आप उन्हें तुष्ट कीजिए और आशीर्वाद लीजिए। उन्हें बैठकर भोजन कराइए। दरवाजे पर आ बैठें तो पूछिए- पंडित जी, आप भोजन बनाने की झंझट क्यों करें, यही प्रसाद पाइए। हाथ उठाकर अपने आशीष से आप को निहाल कर देंगे।

*　　　*　　　*

गांधी जी के नाम पर पेंशन डकारने वाला यह पंडित अछूतों की छाया से भी डरता है। ब्रह्मा के मुख और पैरों में जो अंतर है, उसे पंडित जी कैसे भुला दें? आत्मकेंद्रित पंडित जी का सार्वजनिक रूप छलना मात्र है। वह एक बकरे के गले में थन के समान है। पंडित जी रोगियों, शोषितों और पीड़ितों को उनके पुनर्जन्म का भोग बता संतोष पा लेते हैं। वे बढ़ते डग को पीछे लौटाने वाले, उत्साह से बढ़ने वालों के आगे निराशा का हव्वा खड़ा करने में माहिर, धर्मभीरु, स्वार्थरत पंडित जी के हाथों जिस गांव का नेतृत्व है, उसके कर्म फूट गए..., मानने में आपको अभी भी हिचक है? पंडित जी ने खाया है- खिलाया नहीं, पंडित जी ने लिया है दिया नहीं, देश सेवा की नहीं है- मुआवजा वसूला है। 'गोरू न बाछी, नींद आवे आछी', पंडित जी मस्त हैं, निर्द्वन्द हैं, उनकी गोत दुरस्त है, वह क्यों किसी के लिए मरे और खपे? रहा गांव का विकास, वह तो होगा ही, अपनी रफ्तार से। पंडित जी तो उस बस के मुसाफिर है जो चल रही हो तो उस पर सवार हो जाएंगे, धक्का देकर ठेलने वाली बस से कोसों दूर हैं। सफाई पसंद पंडित जी की दिनचर्या में सुई बराबर भी फर्क नहीं पड़ता। कलाई की घड़ी उन्हें आगे बढ़ने को उकसाती रहती है। शौच के लिए बैठे पंडित जी की निगाहें घड़ी की सुई पर है। समय पूरा हुआ, उठ खड़े होंगे।❑

अतृप्ता

आमों की भूख गुठलियों से कैसे दूर हो सकती है, संयम गांव की डगर में छूट गया था। चंद्रकली खुलकर खेलेगी, जीने के लिए घर से निकली है तो जीकर ही रहेगी और फिर उसका बुढ़ापा रो पड़ा...।

कमान से झुकी उसकी जर्जर देह, बहरी अंधी बुढ़िया पर आज तरस खाने वाले, खीजने वाले, चिढ़ने वाले और हंसने वाले सभी तरह के प्राणी मिलते हैं।

*　　　*　　　*

श्यामू की मां का एक जमाना था। गांव ऊपर रईस की मालकिन थीं। गोरा-चिट्टा रंग, खाने-पहनने का सुभीता, मान-सम्मान, रोब-दाब सभी कुछ था। देवरानियां लिहाज करतीं, बहुएं अदब बजातीं और पड़ोसिनें मक्खन लगातीं। जवानी की ठसक, पैसे की अकड़ ने चंद्रकली को सातवें आसमान पर चढ़ा

दिया था।

जियावन के साथ उठने-बैठने वाले उसके भाग्य पर ईर्ष्या करते। चंद्रकली के झलक पाने की ललक में चौपाल छोड़ने का नाम न लेते। झांझ की झनक, चूड़ियों की खनक से चौकन्ने हो जाने वाले यारों को भाभी के हाथ के बीड़ों का क्या पूछना? उन्हें भाभी के हाथों का बना शरबत, बिना चीनी डाले ही मीठा लगता। चंद्रकली आती क्या, बिजली कौंध जाती थी। उभरे कपोल और उन पर हमेशा छायी रहने वाली मुस्कान देवताओं का मन भी खींच लेती। जैसा ही उल्लसित रूप दिया था विधाता ने, वैसा ही उद्दाम स्वास्थ्य मिला था।

जियावन चालिस पार कर चुका था तभी वह अपने बापू की जिद पर अल्हड़ युवती चंद्रकली के साथ तीसरी बार सात फेरे घुमा था। पहली शादी में पेड़ा के लिए मचल कर भांवरें फेरी थीं, दूसरे विवाह की राधा ने बारह वर्ष साथ दिया और एक दिन सौरी में एक मास का पिंड छोड़ चलती बनी।

* * *

रघुवा ने जब से सुधी संभाली तब से वह इसी बखरी का होकर रह गया। मां-बाप, भाई-बहन संसार में क्या चीज होते हैं वह नहीं जानता।

उसके बाप ने कर्ज अदा किए बिना ही आंख मूंद ली थीं। गनीमत थी जो रघु पल्ले पड़ गया।

टीन के बड़के कटोरे में माठा और बजरी का भात खा कर जानवरों के पीछे दौड़ने वाले रघुवा की मसें भीगने लगीं। आवाज में भारीपन आ गया, बालों में तेल लगाने का शौक चर्राया, थैली भी बांधने लगा। जानवरों के लेहड़ को छोड़ दूर दूर के अखाड़े की माटी भी पोतने लगा। फगुआ में उसकी टेर अलग ही सुनाई पड़ती है। फगुनहटा बयार उसे बावला बना देती। 'ब्रज में हरि होरी मचाई रे, रसिया...' गाते - गाते झूम पड़ता। नाच उठता और धुआंधार अबीर गुलाल के बीच खो जाता।

फागुन में ही तो नई मालकिन के गौने का डोला उतरा था, उसका मन सिहर उठा था। मालकिन उसे खाना परोसती, वह निहाल हो जाता। मन और पेट दोनों

भर जाता। मालकिन के हाथों की छौंकी बघारी दाल वह चाटता ही रह जाता। हंसी में वह कहती, 'अरे रघुवा, कटोरा फोड़ डालेगा क्या?'

मुर्गा बोलने न पाता कि रघुवा बिछौना छोड़ देता। गाय-बैलों की सानी करता, 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई...' से फिल्मी गानों तक उसका दखल होता। रघुवा के दर्द भरे गीत मालकिन की नींद हराम कर देते। उसके गले की मिठास, उसकी कजरारी आंखें, चौड़ा सीना, बलिष्ठ भुजायें, घुंघराले बाल, उसकी मस्ती, उसका अल्हड़पन, उसकी शोखी, उसकी सरलता, उस की लालसा, उसकी प्यास, चंद्रकली के उद्दाम यौवन की आग को प्रकंपित कर देती। वह अपने को संभाल न पाती। उसी में खो जाती और अपने ही दांतो से अपने होंठ चबा लेती। आमों की भूख गुठलियों से कैसे दूर हो सकती है? वह जागती रहती, उसके हृदय में रह-रहकर एक शूल चुभता था। वह प्रेमी की बाहों में सिमट जाने को विवश अभिसारिका सी व्याकुल हो उठती। रहा जियावन, वह उसके प्रेम का नहीं, सम्मान का पात्र था। वह चाहती- उसे कोई समझे, उसके रूप को परखे, उसके सौंदर्य की प्रशंसा करे और उसके प्रेमपाश में आबद्ध हो जाय।

* * *

रघुवर को चबेना देना है..., अभी मरा खाना नहीं ले गया..., घंटों तालाब में तैरा करता है..., जूड़ी धर दबायेगी तब बच्चू को याद आएगा। चंद्रकली झल्लाती रहती तभी रघुवर थाली सरका देता- 'मालकिन जल्दी पड़ोस दो, भूख लगी है।' उसकी भूख का अनुमान लगा सचमुच मालकिन का मुख-मंडल दीप्त हो उठता। रघुवा को लगा कि मालकिन की आंखें उसके चेहरे पर फिसल रही हैं। रघुवा को मालकिन की मादकता घातक जान पड़ी। चंद्रकली उसे प्यासी नजर आ रही थी।

'आगे नाथ न पीछे पगहा' रघुवा अपने में मस्त है, टांगे फैलाकर सोता है, बिरहा गाता है, उसांस भरता है। बखरी से दोनों जून खाना-कपड़ा मिलता है, मालकिन की दया से गुड़-चबेना में कमी नहीं रहती, त्योहारों पर भाजी, सुहारी, गोझा कहीं गए नहीं, भुने आलू, शकरकंद, गाजर, चने का छोला, बाजरे की

बालें, ईख का रस, आम का पना, भांग-सुरती यह सब मौके दर मौके उसे अपने हिसाब से मिलते ही रहते।

आधे पहर के बाद दशहरे का दल देखने बाजार पहुंच जाता, माघ में एक दिन गंगा जी में गोता लगाये बिना उसके पुरखे तरेंगे नहीं...। दिवाली, होली, देवी के मेले में पहुंचे बिना मेला फीका पड़ जायेगा अथवा गांव में कोई बला आ जायेगी ऐसी उसकी मान्यता है। महंगे साबुन, गमकौवा तेल, मिस्सी, रंग-बिरंगी बिंदिया लाकर मालकिन को देने में उसे बड़ा सुख मिलता। मालकिन का विश्वासपात्र रघुवा मालकिन के इशारे पर अपनी जान हथेली पर रख सकता है, आकाश के तारे तोड़ ला सकता है, समुद्र फांद सकता है ऐसा था उसका दम्भ। रघुवा का अनुराग उसके शब्दों, दृष्टि और व्यवहार से चंद्रकली पर प्रकट हो जाता।

* * *

खलिहान में चैती जमा हो रही है, बाग में महुआ चू रहा है, मधुपान से छके भ्रमर गूंज रहे हैं, झाल-डलिया-भौंकी लिए मुंह अंधियारे आंख मीचे बालक-बालिकाओं की टोली महुआ बीनने जा रही है। गांव में फुसफुसाहट है, कानों-कान खबर फैलते देर नहीं लगी कि चंद्रकली और रघुवा गायब हैं।

भारी भरकम डील-डौल के जियावन मुंह लटकाये किससे क्या कहें? पुरुषत्व का गर्व, कौलीनता का दंभ भरभरा के गिर पड़ा। मुख-मंडल से कभी रोष, कभी क्षोभ, कभी ग्लानि, कभी बेबसी के भाव टपक रहे हैं। रघुवा गया तो हाथ का पगहा भी लेता गया। किस मुंह से रपट लिखायें? रघुवा के सात पुरखों को कोसा गया, उसे जीता गड़वा देने का संकल्प लिया गया, चंद्रकली की बोटी-बोटी कर दरिया में फेंकवा देने का निश्चय दोहराया गया। रहा 'श्यामू', वह परेशान है। उसने यही समझा उसकी नई मां नाना के घर चली गई है।

* * *

बम्बई में सहदेव की खोली में आश्रय पाए ये दोनों जिस अटपटी राह में चल पड़े हैं उस का लेखा-जोखा लगाना आसान नहीं। रघुवा की उन्मुक्त हंसी, उसकी ऐंठ, उसकी शान जो गांव घर में थी वह यहां कहां नसीब? वहां

खुशकिस्मत था, यहां किस्मत का मारा - राह का ठीकरा। चंद्रकली शासक है, रघुवा शासित है। वहां अपनी निधि का रखवाला था, यहां मूकदर्शक है। वहां निधि को पाने का नशा उसे रंगीन बनाए रखता, उस टीस में मादकता थी, दर्द था, सिहरन थी, उसकी जवानी उसे सिंहासन पर चढ़ाए थी, यहां उसका अहम गल-गलकर बह गया। जैसे लाभ की आशा से व्यापार करने वाला अपना मूल भी गवां चुका हो। निधि भांप गई, उसका धनी धोरी इतनी बड़ी विभूति पचाने में सक्षम नहीं है। वह अब खुलकर खेलेगी, जीने के लिए घर से निकली है तो वह जीकर ही रहेगी।

चंद्रकली बढ़ती वयस को पीछे धकेलती और भी चपल डग भरने लगी थी। सत्ता भ्रष्ट रघुवा सहदेव और चंद्रकली के इशारे पर दौड़ने वाला हॉकर होकर रह गया।

भोग को नियंत्रित रखने वाला संयम गांव की डगर में छूट गया था। एक बार बांध टूटा नहीं फिर उसके वेग को संभालना आसान नहीं। दिन सरकते गए- 'माले मुफ्त दिल बेरहम' पियक्कड़ सहदेव दीन दुनिया से बेखबर हो उठा। रघुवा ने उसकी जवानी के आगे चारा फेंका, वह लपक उठा। जीवन की धारा मुड़ चली। अपनी सौगात पर किसी की दीव भी नहीं पड़ने देना चाहता था। ठूंठ पेड़ हरिहर हो उठा।

सहदेव को कै-दस्त हुए और वह चलता बना। रघुवा को पुलिस ने जेल पहुंचा दिया। रही चंद्रकली, वह एक ऐसी थकी अधेड़ महिला थी जो किसी भी पुरुष के स्कंधों का सहारा पाते ही लुढ़क सकती थी। ...अंतर्मन का सूनापन और एकांत की पीड़ा का आर्त ज्वार जब हिलोरे मारता तो वह चाहती कि उसके साथ हंसने...... उसके दुःख-दर्द और आंसुओं से सहानुभूति रखने वाला भी तो कोई हो। भोगेच्छा की अतृप्त लालसा..... प्रणयाकांक्षाओं के जजबात उसके दिलो-दिमाग पर छा जाते।

वह दूध के ग्राहकों में से एक स्वस्थ, धनी पंजाबी युवक के साथ लाहौर जा पहुंची। देश का विभाजन हुआ। लाहौर से काफिला पूरब को चला। भाग्य की मारी चंद्रकली शरणार्थी कैंप में रहने लगी। समाज की लांछना, विद्रूप व्यंग्य

झेलने वाली चंद्रकली अब कहां जाय?

संयोग से कुंभ पर्व पर फिर उसने अपना देश देखा। गांव की औरतें भला जियावन की चंद्रकली को न पहचानें? मोह भी कितनी विचित्र वस्तु है। श्यामू ने पैर पकड़ा। उसकी आंखे सहस्त्रधार होकर अपनी मनोव्यथा बहाने लगी। अत्यंत आर्द्र कंठ से चंद्रकली बोली, 'भईया, अब मुझे संसार की ठोकरें खाने दो।'

*   *   *

श्यामू की जिद से, गांव की खोई निधि श्यामू की नई मां अपनी बहुओं, नाती-पोतों के बीच आ पहुंची।

चंद्रकली ने गांव-घर की बदली तस्वीर देखी, उसका बुढ़ापा रो पड़ा। जियावन चला गया था। उसकी याद में अब भी अंधी बाहरी बुढ़िया रो पड़ती है।❑

लाला भाई

लाला भाई कहने से कोई उन्हें पटवारी या लेखपाल समझने की भूल न करे। पण्डित घराने में लाड़-दुलार से पला 'लाला' ही आज सबको 'लाला भाई' सरल पड़ता है।

तीन भैंसों की दूध-मलाई खाने वाले, लाला भाई की देह अब आधी भी नहीं रह गई। आजी का दुलार, काका का प्यार, दादा की पुचकार, भाई का स्नेह सभी लाला भाई के लिये वरदान सिद्ध हुआ। जवानी अखाड़े पर जोर आजमाने पर बीती। तहसील के स्कूल की छठी जमात पढ़ने के बाद लाला भाई गृहस्थी में रम कर रह गये। पर उनकी दरवारी टोन, बैठक बाजी कहीं गई नहीं। उनसे बात करिये - जी नहीं ऊबेगा, उनकी अपनी एक शैली है, बात कहने का एक लहजा है, देश-विदेश, जिला-राज्य, गांव-घर, खेती-बाड़ी, नौकरी-

व्यापार सभी पर दखल है। मौसम का हाल बतायेंगे, गर्मी किस सिद्दत से पड़ रही है, मानसून कहां से चला और कहां पहुँचा, बारिश के आसार कैसे हैं, तापमान कितना गिर गया आदि लाला भाई सुनाते क्या हैं - हू-ब-हू चित्र खींच देते हैं। श्रोता टुकर-टुकर निहारने के सिवाय और करेगा ही क्या?

उन्हें अपनी बात सुनाने का नशा है। शरीर के पुर्जे-पुर्जे का बखान करेंगे। बीमारी के कथानक सुनाने लायक होते हैं। भाय, पेट में मधुर-मधुर दर्द है, टट्टी पतली हुई, दाना मिठाता नहीं, जुकाम के मारे सिर जकड़ा है, हरारत पिंड नहीं छोड़ती आदि शरीर के अंग-विशेष को पकड़कर, दबाकर भाव मुद्रा के साथ बताने में उन्हें कमाल है। कुबरू वैद्य के प्रशंसक लाला भाई अपने शरीर के प्रति सजग रहने वाले अलबेले जीव हैं। गोरस का अंझा होने पर सुबीर काका और अवधे बेटा को गड़रियान से बेनागा दूध लाना ही पड़ेगा।

बेटे-पोतों के होते हुए वे अब भी लाला हैं। दूध,चीनी,गुड़, बताशा चाहिये ही, दाल-तरकारी उनके हिसाब से छौंकी-बघारी गई हो। कब - कौन चीज किस ढंग से खाई जाय - इसका शऊर कोई उनसे पूछे। अवधे की माँ के हाथ-रसायन से जीभ चटकारने लगेंगे, गांवभर के चुनिंदा आम के पेड़ों का स्वाद उनसे जानिये, बाजार-शहर के किस हलवाई की कौन मिठाई खाए बिना यमलोक के दूत फिर यहां धकेल देंगे - उन से पूछिये। लाला भाई भूख नहीं बरदाश्त कर सकते, जीभ नहीं रोक सकते - हजारी की दुकान बरबस उन्हें बुला लेती है, लोकनाथ की बर्फी खाए बिना हटेंगे नहीं, मेला-बाजार जाकर भी बिना खाए लौटने वालों की बुद्धि पर लाला भाई तरस खाते हैं।

सीना ताने, घुटनों तक धोती, चमरौंधा जूता, पंजाबी ढंग की अलफी (कुर्ता) पहने लट्ठ संभाले, सिर पर अंगोछा लपेटे, सुरती मलते, मटियार की मेड़ों पर चहल कदमी करते लाला भाई अपनी किसानी का ताव संभालने में चौकस रहते। भइया-मुन्ना कह अपना काम साध लेते, बातों की चिकनाई में फिसलते किसे देर लगती? पटवारी-लेखपाल उनसे पनाह मांगते, कारिन्दा अमीन उनके लतीफों पर निहाल हो जाते, तगादगीर 'हां' में 'हां' मिलाने लगता। बाजार से नफीस माल खोज लाने में लाला भाई को कमाल है। गांव की

नस-नस से वाकिफ लाला भाई को कोई चरा नहीं सका, दांव पर कस नहीं सका, वे सबकी सुनते - हुकांरी भरते, सबके सगे बने रहते, पर करते अपने मन की..., उनके पेट की थाह पाना आसान नहीं।

नाग-पंचमी के दंगल में उनका दम खम देखते ही बनता, अखाड़े की माटी पोते लाला की कलाई पकड़ना आसान नहीं था। लाला तकदीर के धनी हैं। काका-दादा ने उन्हें पान की तरह सेया। लाला भाई निर्द्वन्द रहते, बाप के रहते गृहस्थी की चिंता करना पाप समझते थे। पानी पड़े-पत्थर गिरे-बैल काँपे पर लाला भाई की मौज में फरक न पड़े। घर-द्वार, माल-जाल, खेती-बाड़ी काका संभालते। देह बनाना, चौपाल की शोभा बढ़ाना, गांव की नस टोहना इनका काम था। चौपाल में आल्हा होती, रामायण होती, कुढेरी में पूरा गांव ठंडाई छानता। अलाव में किस्से लतीफों के साथ पहलवानों की खुराक, कुश्ती के दांव-पेंच, शहराती नजाकत, बनियों की मक्कारी, रूपये की कीमत, भारत-पाक संबंधों, अणु-शक्ति की बृद्धि पर डटकर चर्चा होती। लाला भाई धाराप्रवाह घंटों बतिया सकते हैं। कांग्रेस के बार्ड सचिव की साईकिल पीपल पर ही पकड़ ताजा समाचार जानकर ही आगे बढ़ने देते।

बाप की आंख मुंदने पर लाला कैसे-क्या करेंगे?... पर लाला जिम्मेदारी निभाने वाले योद्धा थे। सिर पर पड़ते ही ऐसा संभाला कि पड़ोसी दंग रह गए। अखाड़े का जोर खेती पर आ पड़ा, धरती सोना उगलने लगी। लाला भाई ने खाने-पहनने में कोर-कसर नहीं की। दुनिया चलती रहेगी, खाना-पहनना ही स्वास्थ्य है। लाटा (महुआ, अलसी अथवा तिल का बना) उन्हें बेहद पसंद था। उसका गुनगान उनके मुंह से सुनकर खाने से भी अधिक जायका मिलता।

संयोग कहें अथवा लाला की योजना। बड़े बेटे का स्कूल से साबका नहीं पड़ा। छोटे को गांव ऊपर जी भर पढ़ाया। युनिवर्सिटी की ऊंची शिक्षा पास कराई, औकात से भी अधिक उसके रहन-सहन को उठाया। बड़ी बेटी-आजादी के लिये जूझने वाले त्यागी - कर्मठ गांधी के चेले के परिवार में ब्याही गई और छोटी उसके विपरीत सामंतवाद के प्रतीक महाजन परिवार में।

कांग्रेस पर अटूट आस्था रखने वाले लाला भाई का खाना तब तक नहीं पचता जब तक कि वे रेडियो से समाचार न सुन लें। सुखों में पली देह-बदलते जमाने की हवा नहीं बरदाश्त कर पाती। चाय और डालडा के युग में लाला भाई तड़पकर रह जाते। बादाम और पिश्ते के भाव सुनते ही कांप उठते हैं।

अखाड़े का पहलवान, गांव का उजागर, उत्तर टोले की शान लाला भाई तुलसी-मीरा और सूर के भजनों से दिल को चैन और ब्रह्मानंद भजनमाला से मन को बोध दिया करते हैं। ❑

ठूंठ हरिहर हो उठा

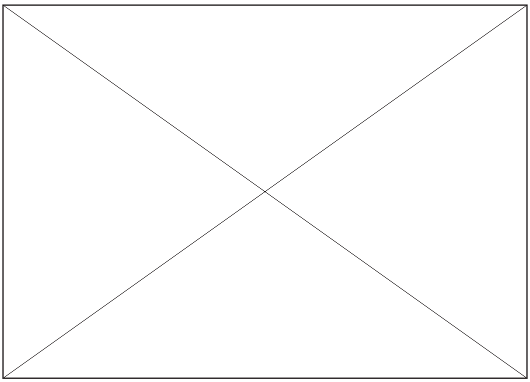

जियावन की कसरती देह कांटा हो रही है, खांसी बुखार भी नहीं छोड़ता। उसने कभी मौर बांधा था, किसी का घूंघट खोला था। तीन बच्चों का बाप भी है। दैव की मार कहें या कर्मों का भोग, आज उसका संसार सूना है। उसका अंतर रो रहा है। कुंठित जीवन से हारकर, भीतर और बाहर के संघर्ष से कतरा कर, इस हद तक जड़ बन गया कि इस स्थिति से उबरने की कोई प्रवृत्ति ही उसमें शेष नहीं रही।

त्रिया चरित्र की, औरतों की बेवफाई के किस्से उसने अलाव में बैठकर सुने थे, हुंकारी भरी थी, मेले-ठेले में खरीदी किस्सा तोता-मैना आदि से जानकारी भी थी, पर यह किस्से उसके ऊपर ही उतरेंगे, इसका भान तक न था।

अच्छी खासी गृहस्थी चौपट हो गई। रज्जो घर का, दुकान का काम

संभालती। बच्चे पढ़ते-खेलते-कूदते नजर आते, भैंस दूध देती, कुठले भरे रहते, खेत-खलिहान, बाग-बगीचे सभी में चमक थी। गांव में मान था। बैठक-बाज था, किसानी-मरजाद का नशा उबाल पर था।

गांव के जवान आकर्षक और सजी-धजी नौजवान रज्जो से बतियाने को, उसके हाथ से सौदा लेने के अवसर की टोह में रहते।

रज्जो अपने को संभाल न पाई। घर, डगर, घाट में फुसफुस होने लगी। क्या सच? क्या झूठ? किस्सों के व्यूह में फंसी रज्जो को छुटकारा नहीं। रज्जो ने देखा उसका प्यार अपमानित हो रहा है, घुट-घुट कर जीने की अपेक्षा उसने संबंधों को तोड़ना पसंद किया।

बहत्तर घाट का पानी पी चुकी है.., इन तानों ने उसे बेंध दिया। जिस खूंटे में बंधी थी, वहीं जब आंखों में अविश्वास भरकर प्रश्न भरी नजरों से देखने लगा तो वह अपने से ही विद्रोह कर बैठी।

रज्जो को जिस दिन लगा कि पति के रूप में मिले इस नकारा आदमी के साथ रहना अब मेरे लिए नामुमकिन है, उसी दिन वह निकल गई। दस वर्ष की जिंदगी को एक झटके में तोड़ते शायद दस मिनट भी नहीं लगे थे। फिर उसे कौन मना पाया था- न तो सांस के आंसू, न जेठ की बुजुर्गाना सलाह, न तो सामाजिक बदनामी और न अपमानित पति-देवर की धमकियां...।

तारे अभी पूर्ण रुप से फीके नहीं पड़े थे, चारों ओर गहरी निस्तब्धता छाई थी, रज्जो और मगन के पैर स्टेशन की ओर लपके जा रहे थे, प्लेटफार्म छोड़ती गाड़ी में उसका दिल भर आया था - वह गुपशुप रही। आदमी जरा सा पिल्ला पाल ले तो उसी से मोह बंध जाता है, फिर अपने बच्चे तो अपने ही हैं, अपने ही शरीर के हिस्से हैं, भला ममता कैसे न होगी, हकीकत तो यहीं है कि जियावन का साथ वह जीवन में पचा नहीं पाई।

मगन ने उसके सामने जो नक्शा खींचा उसमें उसे भरपूर खेलने की, अपनी कसक मिटाने की और रंगीन दुनिया में अपने को डुबा देने की पूरी छूट थी। संयम की चादर मैली हुई नहीं कि बांध फूट गया। रज्जो का औरतपन किसी

अज्ञात पुरुष की तलाश में भटकता रहा।

जियावन की जीवन पुस्तक में चित्रगुप्त एक नया पृष्ठ लिख रहा था। रज्जो इतनी बेवफा हो सकती है इसका उसे गुमान तक न था। घर काट खाने को दौड़ता, उसके कोने-कोने में रज्जो की गंध समाई हुई है...। उसे लगता वह चूल्हे चौके में है..., बच्चे को दूध पिला रही है..., बिटिया के सिर के जूं निकाल रही है। खोया-खोया सा जियावन न सोने में, न जागने में, न चेतन में, न जड़ में। भूला-भ्रमा सा जियावन चौंक पड़ता, घर का कोना-कोना खोजता, रज्जो कहीं छिपी बैठी है, वह कहीं गई नहीं, उसके कपड़ों को सहलाता, मसलता, पुचकारता।

बरसात की गरजन-तरजन, उसकी फुहार, उसकी झड़ी उसे बेचैन कर देती, सपनों में खो जाता..., पायताने हाथ जोड़े रज्जो गिड़गिड़ाते हुए क्षमा मांग रही है..., आंसू बहा रही है..., वह लपकता और पछाड़ खाता गिर पड़ता। बच्चों को निहार रो पड़ता। अचकचाये बच्चे पूंछ पढ़ते, 'पापा सोए नहीं', पापा क्या बताएं? नींद ने भी साथ छोड़ दिया। साथियों से कहता, जब देह की नाड़ी अपनी नहीं तो घर की नारी का क्या भरोसा? उम्र से पहले ही बुढ़ाने लगा था, हीनता की कचोट, अपने प्रेम का तिरस्कार उसे सालता रहा - सूख गया था, आंखें धस गई थीं, शरीर पीला पड़ गया था।

तिल तिल कर मृत्यु से गुजरते जियावन को उसके भाइयों ने जिद कर अस्पताल में भर्ती कर दिया जरूर, पर क्या डॉक्टर उसके घायल मन का उपचार कर पाएंगे?

* * *

यह क्या? नई नर्स राज को आज अपने ही जियावन की परिचर्या करने की ड्यूटी मिली। चेहरे पर विषाद और आंखों में नैराश्य की छाया..., जियावन के जीवन का यही विपन्न रूप उसे देखने को मिला। वह अपने नर्सपन को भूल गई। जियावन की छाती में मुंह गड़ाए रज्जो फूट-फूटकर, हिलक-हलक कर खूब रोई। उसके आंसुओं से जियावन का वक्ष भीग गया था।

जियावन को काटो तो खून नहीं, वह खिड़की से कूद भाग जाना चाहता

था, मर जाना चाहता था, पर रज्जो ने उसे जकड़ लिया। अत्यंत आर्द्र कंठ स्वर से रज्जो ने पुकारा, बच्चों की खैर पूंछी और उसे आश्वस्त किया। रज्जो के दुःख इतने गंभीर थे कि शब्दों से उसका शतांश भी नहीं प्रकट कर सकी, उसकी आंखें सहस्त्रधार होकर अपनी मनोव्यथा बहाने लगी। करुणा के अश्रुओं से सिक्त रज्जो की दृष्टि ने जियावन को मोह लिया। रज्जो भूली सी, भ्रमी सी ताकती रही। जियावन का संवेदनशील स्पर्श पा वह और भी विगलित हो उठी थी।

कहना न होगा रज्जो ने अपने जियावन को मौत के जबड़े से खींच लिया। अस्पताल की तत्परता, डॉक्टरों की कुशलता, स्टाफ की तीमारदारी ने उसे चंगा होने में कुछ उठा न रखा।

रज्जो ने अपने सिर पर अनुभवों की जो पोटली बांधी थी, जो भोगा था, जो झेला था, उसके दर्द की टीस से वह तिलमिला उठती है। उसे लुटेरे मिले..., गिद्ध मिले..., औरत का दुख-दर्द समझने वाला दिल न मिला। अंत में उसे त्राण यहीं मिला, या यूं कहें कि जियावन की भलमनसाहत, नैतिक तर्क और बच्चों का मोह उसे जीवन के पास नहीं लाया, बल्कि हताशा ले आई।

अपनी खोज में परास्त हो, थक कर जियावन की छाया में बैठ जाने के सिवा उसके लिए दूसरा कोई विकल्प नहीं।

दांतों तले अंगुली दबाय, गांव में एक बार फिर फुसफुसाहट ने जोर मारा और लोगों ने देखा जियावन में जीने की ललक हो उठी, ठूंठ हरिहर हो चला, उजड़ा खेह आबाद हो चला- प्यार के प्यासे बच्चों को मां का दुलार मिला, कुरेदने पर भी गांव का स्टेशन छोड़ने से नर्स बनने तक के अपने दर्दीले जीवन की गाथा बताने में संकोच और ग्लानि करने वाली रज्जो को जियावन का सिर दबाते, हुक्का भरते, मनुहार करते और बलैया लेते सहज ही देखा जा सकता है।❑

साधू दादा

लंबी नाक, उन्नत ललाट, लंबा डील-डौल, शरीर में चुस्ती, बात के धनी, खरा स्वभाव साधू दादा के जीवट और दिलेरी की कहानियां आज भी लोगों की जवान पर है।

मक्खनबाजी से दूर साधू दो टूक बात कहने में कभी पीछे नहीं रहे। मुरौवत के फेर में पड़ जहाँ न्याय का गला घोंटा जाता हो, आतंक अथवा दबाव से सही बात कहने में पँच हिचक रहे हों - वहां साधू न्याय का पलड़ा थामते। वे किसी की राजी-नाराजी से कोई गरज न रखते।

लेन-देन में चौकस रहते, घिघियाना जाना नहीं, गृहस्थ साधू थे, बच्चों के मोह ने उन्हें फुसलाया नहीं। तिकड़म से चिढ़ने वाले साधू किसी की जमीन हथियाने, किसी की जमा मारने, मिलकर धोखा देने से कोसों दूर रहे।

छल-प्रपंच की चुपड़ी के बजाय सूखी खाने में ही सौभाग्य समझा।

अपनी कमाई पर संतोष रखने वाले साधू डटकर किसानी करते, परिवार चलाते, हिसाब साफ रखते। किसी के दबैल नहीं हुए, बात बरदाश्त नहीं की, जितनी चादर थी - उतना ही पैर फैलाया। झूठी वाह-वाही के फेर में नहीं पड़े। सुरती छोड़ कोई व्यसन नहीं साधा। अरहर तैयार हुई - आखिरी दाना तक बेचकर महाजन का हिसाब साफ किया। गृहिणी ने कहा - कुछ दाल के लिए बचा लो। आँख तरेरी और कहां - सूखी खाकर गुजर कर लेंगे।

साथियों ने टटोला - 'भाय, अहीर की जमीन जाने न पावे।' ऊपर निहारा और बोले - 'निरंकार पर भरोसा रखो, किसी की रोटी छीनना गुनाह है'। वे अपने बच्चों के लिए जैसे-तैसे माया बटोरने के पक्ष में नहीं थे। वे अपरिग्रही थे, किसी की बेवसी का लाभ उठाने से चिढ़ थी। दूसरे की सम्पति पर गिद्ध की तरह मडराने वालों का डटकर विरोध करते - चाहें कितना ही सगा क्यों न हो?

खेती दगा दे जाती, सूखे से फसल मारी जाती, भूखो मरने की नौबत होती, पर निरंकार का सहारा पकड़ने वाले साधू कभी हाथ पर हाथ रख बैठे नहीं। बैलों की लाद करते, बछड़ा खरीद बैल बनाकर बेचते, पशुओं के गुण-दोष परखने में उनकी निगाह का सभी लोहा मानते। दूर से ही पशु को देख दाम आंक लेते।

भाइयों से बंटवारे में जो कुछ पाया संतोष किया। अपने हाथ-पैरों की मशक्कत पर नाज रखने वाले साधू ने किसी का बुरा नहीं चेता। वे गावं के निर्भीक मानिंद थे। जमीदार की पाई-पाई समय से पहले भुगतान का दम रखते थे। भूख सह लेंगे, पर बात नहीं। बेटा-बेटी-दामाद-भाई सभी से लेन-देन साफ रखते। न किसी का दबाते, न अपना दबने देते।

दोनों बेटे अपने काका का लिहाज करते। बड़े बबऊ बयालिस के आंदोलन में जेल गए। घर की तलाशी हुई। अनासक्त साधू ने गांव में पुलिस के दमन को देखा। बेटे और भतीजे के संघर्ष में जूझने की दाद थी और उनकी हुकांर ने बता दिया कि फिरंगी शासन थमने का नहीं।

दमन की आंधी में दादा ने गांव का मनोबल गिरने नहीं दिया। देश की आजादी के लिए वे बड़ी से बड़ी कुरबानी को छोटा ही मानते। उनके आँगन में लहराने वाले झंड़े की शान कम नहीं हुई। देश आजाद हुआ, जमींदारी टूटी, पंचायत बनी, लाइन में लगकर दादा ने अपने जीते-जी दो-बार वैलों की जोड़ी को जिताया भी।

दादा का खरापन, उनकी सच्चाई, उनका स्वाभिमान, उनकी हुंकार, उनकी मर्यादा जिस पक्ष को सालने लगी - उसके जाल में वे और उनका परिवार आखिर आ ही गया। दादा ने परीक्षा की घड़ी में जीवट से काम लिया और 'तजिए ताहि कोटि वैरी सम, जदपि परम सनेही', गुनगुनाते हुए अपने छोटे पुत्र को अलग करके ही दम लिया। समाज में क्या नहीं होता? क्या नहीं पचता? इन लाचार दलीलों से समझौता करना साधू ने सीखा ही न था।

अपनी हुंकार और दहाड़ के कारण वे गांव के शेर थे। चरवाहे उनकी धाक पर सहम जाते, मजाल - उनके खेत में कोई चारा कर ले। किसी के खेत की बाली का नुकसान किए बिना ही उनके द्वार की भैंस मोटी-ताजी बनी रहती। कोई गोल उन्हें अपने में बांध नहीं सका।

उनका अक्खड़-अलमस्त स्वभाव किसी के वश में न हो सका। वे अपने खरेपन के कारण 'एकला चलो रे' के हिमायती थे। लाला भाई और राम जानकी के चबूतरे पर कटोरा भर झन्नाटे की भाँग-ठँडाई डकारने का मौका न चूकते।

जिस शान के साथ जिये - उसी शान के साथ मरे। साधू न बीमार पड़े, न बीमारदारी कराई, न थूक, न खखार, न मल, न मूत्र। भोजन करके दुपहरिया आराम के लिए चारपाई पकड़ी। कुछ दर्द हुआ... और गांव का निरंकार - निराकार में लीन हो गया।❑

ओझा जी

'उपजहि अनत-अनत छबि लहहीं' जन्में घोघापुर में पर वे परसरा के होकर ही रहे। परसरा उन्हें बहुत प्रिय था। पता नहीं इस धरती में कौन सा आकर्षण था जो उन्हें बरबस यहीं खींच लाता। न घर, न द्वार, न जमीन, न जायदाद, न स्त्री, न बच्चे और न परिवार। सन्यासी हुये फिर भी देह का नाता यहीं से छूटा।

1939-40 में वे संस्कृत पढ़ने कानपुर गये थे। आजादी की लड़ाई में वे दीनबंधु पाठक के साथी रहे। जेल गये, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी की पेंशन प्राप्त की, उनका अपना एक ढंग था। वे ब्राह्मण थे, पण्डित थे, बीसों वर्ष गांव के सभापति रहे, पंचायत सेक्रेटरी बने, गांव का प्रतिनिधित्व करते थे। वे सुनते रहते, पर पकड़ पाते ही बड़ों-बड़ों को लेक्चर से झकझोर देते।

परसरा के अनेक ऐसे हैं जो बाहर गए और फिर उन्होंने इस गांव की ओर मुख नहीं किया। परदेश में ही जिये, खपे और मरे। पर धन्य हैं ओझा जी, इन्होंने परसरा को किसी कीमत पर नहीं छोड़ा। कोई आश्रम, कोई तीर्थ, कोई स्थान उन्हें रुचा नहीं। उनका मन घूम फिरकर यही की धरती में शांति का अनुभव करता। 1990 के माघ मेले में दुगारी जी के आश्रम अरैल में उनके दर्शन हुए थे दंडी स्वामी के रूप में।

उनमें कुंठा थी, ओझाइन अइया खरिहान से प्राप्त अनाज और गांव के सीधा पिसान से उनका पेट भरती थीं। इसे वे भूले नहीं थे। पेंशन जमा होती रहती और यह ब्राह्मण सादगी से अपना निर्वाह करता रहता।

उनके चमकीले दांत, लंबी दाढ़ी, स्वस्थ शरीर, भाल में त्रिपुण्ड, घड़ी बांधे, खड़ाऊं पहने, पुस्तक थामें, गाती लगाए ओझा गांव की गली में घूमते, चौपाल चबूतरे की शोभा बढ़ाते, परसरा के ओझा से पूरा जवार परिचित था। वह गांव की शान थे, गांव की आवाज थे, गांव उनमें समाया हुआ था।

न्यौता में वे खरी कचौड़ी पसन्द करते। पत्तल साफ रखते। बचा हुआ रामरस (नमक) से हाथ की चिकनाहट दूर करते।

रेडियो से खबर सुनने के शौकीन ओझा जी ठीक समय लाला भाई के यहां पहुंच जाते। परसरा का काला उजला सब उन्हें ज्ञात था, पर मजाल कि वे कुरेदने पर भी कहीं कुछ उगल सकें। वे सब के सगे थे। वे गांव की तिकड़म, वहां की दलबंदी, दांव-पेंच से कोसों दूर रहते। वे अनासक्त थे, योगी थे, जल में कमल की तरह निर्लिप्त थे। पड़ान, दुबान, पठकान, ठाकुरान सभी जगह उनकी पैठ थी। इधर की उधर करने से उन्हें सख्त परहेज था। पांडे काका का चबूतरा, बबऊ भाई की चौपाल, बरगद की छाया उन्हें पसंद थी। बजरी की बालें, होरहा चबाने वे खेत की मेड़ पर जा धमकते, आम चूसने बगीचों में पहुंचते। लाटा, सोंठउरा, दही, माठा, उपरी-कंडा उन्हें घरैतिनों से मिलता ही रहता। वह स्वयं-पाकी थे। किसान-मजदूरों के नहाने की जून के पहले ही ये भोजन कर दाढ़ी पर हाथ फेरते किसी ओर निकल पड़ते। लोग इनका सत्संग पाकर धन्य हो उठते।

बीसवीं सदी की ग्राम्य संस्कृति के प्रत्यक्षदर्शी ओझा जी ने परसरा का

दुःख-दर्द, उसका उल्लास और चैन, गमी-खुशी सभी देखी सुनी। गांव में लाठियां चलीं, पेड़ पर लाश टंगी देखी, कुएं में कूदने वालियों को देखा, दफा 107 के मुकदमें देखे, परिवारों को झगड़ते, टूटते-बिखरते देखा, बूढ़ों को कसमसाते उपेक्षित नकारा देखा, चोरी-छिनारा, नोंच-खसोट, बेईमानी, धोखेबाजी, मक्कारी सभी इनके कानों से पहुंच कर ऐसे बिला जातीं कि फिर उनका निकलना सहज नहीं। इस तटस्थ, उदासीन, निरपेक्ष संत पर थाना, ब्लॉक, बाजार, पंचायत सभी ताज्जुब करते।

ओझा घर बसा सकते थे, खेत-बारी का जुगाड़ भी कर सकते थे, पर ऐसा डर इनमें समा गया था कि वे गृहस्थी के पचड़े में नहीं पड़े। मस्त रहे, संयमित-नियमित जीवन था, स्वस्थ थे, हंसमुख थे, कर्मकांडी पंडित थे। 'न गोरु न बाछी, नींद आवै आछी' के हिमायती थे। कांग्रेस के कार्यकर्ता थे। लालबहादुर शास्त्री, टंडन, रणजीत पंडित, बहुगुणा आदि से परिचय था।

गांव में कहने सुनने से हनुमान जी का मंदिर बनवा दिया। घंटा वह भी नहीं। पैसे को पकड़ते थे। पासबुक पर बढ़ते अंक को देख निहाल हो जाते। उनकी अपनी एक सनक थी, उनका अपना एक जीवन दर्शन था, वह किसी की दम-पट्टी में न आने वाले चालाक, चुस्त, चौकन्ना रहने वाले अलबेले जीव थे।

'रमता जोगी बहता पानी' वाला यह दंडी स्वामी परसरा के मोह को नहीं छोड़ पाया। यही उनकी मां मरी और खपी थीं, यहीं के अन्न से उनका शरीर पला था, उनकी तीमारदारी इसी गांव को नसीब थी। यहीं वह ब्रह्मलीन हुए। गाजे-बाजे के साथ उनका पार्थिव शरीर गांव की गलियों में घुमाया गया। यही के जवानों ने अपने प्रिय नेता, शुभचिंतक, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी को कंधा दिया और अरैल तक तीर्थराज प्रयाग में ही श्रद्धापूर्वक उनका अंतिम संस्कार कर अपने को धन्य किया।❑

छोटकऊ भाई

लम्बे.. दोहरे.. कसरती गठे शरीर वाले छोटकऊ भाई कभी बरगद के नीचे गुड़ - लाई - सुरती - सुपाडी - नोन - मसाला की दुकान भी रखते थे। भरे-पूरे खाते-पीते किसान परिवार के युवक को चार जन घेरे ही रहते थे। तालाब का किनारा, विशाल बट की छाया, महावीर जी की प्रतिमा, बढ़िया चबूतरा, वहीं कहकहों के बीच दिन सरकते जाते।

दुकान माध्यम थी, खाली मन को काम देने, आए गये मेहमानों का सत्कार करने और बैठक बाजी को बढ़ावा देने की।

गाँव की नीति वहीं सिमट जाती। हर घर की ताजी खबरें वहीं मुंह खोल देतीं। देश - जवार, कस्बा की चहल-पहल वही गूँजती। गाँव बढ़ोत्तरी की स्कीमें बनती, गांव के शोहदे और भले लड़कों की सूची वहीं तैयार होती।

थाना कचहरी की वारदातें वहीं प्रकट होतीं।

नई फसल का जायका लेने वहीं मंडली जमती। हरे दाने वाली बाजरों की बालें भूनी जातीं, होरहा चबाया जाता, रसीले पके आमों की डलियाँ वही साफ होती। जेठ की मोटी-मोटी कछार गली ककड़ियों का भोग वहीं लगता। हिरमाना खरबूजे वाले भी अपना झउआ वही उतार कर दम लेते और मण्डली को जायका देते। शनिवार - मंगल को सिन्नी (महावीर जी का प्रसाद) घाते में मिलती। भीगे चने की दाल में लिपटी गुड़ की कंकड़ियां और रोट (पूड़ी) के टुकड़े मुंह को मीठा कर देते।

बबऊ, दुग्गन, डाडिम, भरगो वहीं जमा रहते..., ताश फेंटे जाते..., सोरही खेली जाती..., दंगलो की चर्चा होती..., पहलवानी दावं पेंच पर बहस होती..., गांधी, नेहरू, सुभाष, का बरणन होता, जमींदार की गद्दारी किसान की तबाही का जिक्र होता।

इसी बैठक बाजी का पुण्य - प्रताप था। छोटकऊ भाई 10 साल तक गाँव के सभापति बने रहे। उनकी बात चुकती नहीं है। शौंच को जाते हुए छोटकऊ भाई को छेड़ दीजिए फिर देखिये बातों का सिलसिला कहां से कहां को पहुंच जाता है। डेढ़ कोस की दूर की बाजार कर लोग लौट सकते है, पर छोटकऊ भाई लोटा थामे खड़े-खड़े धारा प्रवाह बोलते रहेंगे। मजे की बात, लोअर-प्राइमरी पास छोटकऊ को कसक है अगर कहीं वह प्राइमरी पास होते तो आज के बहुतेरे विधायकों (एम.एल.ए.) से वे कहीं अच्छे बैठते। उनके कहकहों को जिन कानों ने सुना है, उनके मुक्त हास्य से जो परिचित हैं, वे बता सकते हैं कि छोटकऊ भाई में कितना जीवन है और वे कितने जिन्दा दिल है।

वेद-पुराण रामायण-महाभारत के कथानकों से अपनी बात जमाने वाले छोटकऊ भाई को गांव और समाज की नाड़ी परखने का कौशल वरदान में मिला है। वे बहुज्ञ है, दिल्ली, लंदन, मास्को, चीन अमेरिका सब उनकी मुट्ठी में हैं। वे घंटों बतिया सकते है। उनमें ऐसी प्रचक्षण बुद्धि है जिसने उन्हें व्यवहार कुशल बना दिया है।

भावुक इतने कि जिस क्षण इन्होंने अपने चमरौधा जूते के तलवे में

अनेक कीड़ों को चिपटा पाया, उसी क्षण जूता एक कोने फेंका और लोग देखते है कि छोटकऊ भाई वर्षों से नगे पैर मंजिल तय करते है..., पर पाँव में किसी प्रकार का जूता खडाऊँ पहनना उन्हें पुसाता नहीं। उनके तलबे जेष्ठ की तपती दुपहरी में भी उसी शान के साथ उठेंगे जैसे वे घास के मैदान पर चहल कदमी करते है।

शहर-बाजार ससुराल समधियान नंगे पैर कहीं भी पहुंचने में इस संत को हिचक नहीं। सुपड़ सुघढ़ काया वाले छोटकऊ भाई का विवाह था, लगन आखीर थी..., आद्रा पूरे वेग पर था..., मोर बांध छोटकऊ ने बरसाती नदी पार की। बारातियों को उतारा और भारी भरकम देह वाले वर ने पालकी के कहारों पर तरस खा पैदल चलना ही पसन्द किया।

पड़ोसी के यहां चूल्हा नहीं जला। पूस का महीना। झरियार की रात छोटकऊ सो न सके। एक अगोछे में बना पछोरा बाजरा समेटा, दरवाजे पर थपकी दी और अगोछे पलड़ा भरी, और वापस आ चारपाई पर लेटे।

* * *

घर की बहबूदी बढ़ाने का उन्हें नसा था, दिन भर खेत में काम करते, रात गाड़ी हांकते अपने को गृहस्थी में खपा दिया, अपनी कसरती देह उसी में मिटा दी। बरवारें भरी रहतीं..., लेन देन छिटका रहता। समय ने करवट ली..., छोटकऊ का परिवार बिखर गया..., नये नये चूल्हे जलते गये..., मन बंटते गये और खुली मुट्‌ठी फिर क्या बंध सकी...? परिवार की इज्जत थामे छोटकऊ ने गिरे दिनों को बहादुरी के साथ झेला, धीरज का पल्ला पकड़ा 'जय जवान जय किसान' के नारे को स्वीकार करने वाले छोटकऊ के भुटेने देश की सुरक्षा में जूझ पड़ा और यह योगी अपने बस शंकर के भरोसे धरती से चिपट के रह गया। मजाल है उनके खेत में तिनका निकल आये, प्यासी धरती को पानी मिला..., खेती लहलहा उठी।

कष्ट सहिष्णु छोटकऊ ने दूध के कुल्ले किए तो धूप भी बरदास्त की। सूखा, बेरोजगारी की कठिन परीक्षायें उन्हें विचलित न कर सकीं, इस संत का चिन्तन निराला और सूझ अनोखी है, गीता का कर्म योग इनका संबल है। गांव

की धरती का यह दुलारा मुस्कराता हुआ आज भी अपनी खेती संभालने में किसी से पीछे नही है। बिच्छू काटे को मिनटों में चंगा करने की जड़ी तथा सैकड़ों अजीब गरीब नुस्खे उन्हें मालूम है, राय मशविरा देने में उनका दरबार प्रसिद्ध है।

गावं, देश - जवार, घर की साठ वर्षों की घटनायें इनके सामने तस्वीर की भांति फुदका करती हैं। जीवन के उतार - चढ़ाव, मीठा - तीता, फूल - पत्थर सभी सहने वाले इस महात्मा की साधना पर, उसकी जानकारी पर, उसकी निष्ठा पर, उसकी आस्था पर, उसके परहित चिन्तन पर आज भी सबको नाज़ है।

हजारों दंड बैठक करने वाले, अखाड़े की माटी पोतने वाले को इस चाय और डालडा के युग के स्वास्थ्य को देख रोना आता है। उनकी आँखे नम हो जाती हैं। पिता के दुलार को यादकर खैरी भैंस के दूध से बना देशी घी का लोदा अब थाली में कौन डाले! खेतों में तर हलुआ का नास्ता कौन पहुंचावे? अब तो दो बजे कुल्ला - दतून कर सूखी रोटियों से ही जूझना पड़ता है। बरक्कत छू हो गई, गोरस की महक सपना बन गई। शरीर आधा भी नहीं रह गया, बुढ़ापा छा गया। पर उनकी मस्ती, जिन्दा-दिली और मौजी स्वभाव का कुछ बिगड़ नहीं सका। अपने दुःखों की परिधि में रहते-रहते अपेक्षाकृत उनमें उदारता, पर-हित भावना और सहनशीलता अधिक विकसित हो गई है।

* * *

छोटकऊ भाई का गांव बिजली से जगमगा उठा है। पक्के मकानों ने गांव का नक्शा बदल दिया। चारो ओर ईंटों के ढेर जमा हैं। पत्थर - बालू - कोयले के ट्रक गांव की धरती को कुचल रहे हैं पर गांव में वह सुख कहां? वह सौहार्द कहाँ? वह अपनत्व कहाँ? वह मिठास कहाँ? जिसके लिए देवता भी तरसते है। सहिष्णुता सद्भाव पारस्परिक विश्वास के अभाव से गांव गांव नहीं रह गया।

घर - आंगन के कोने की बात का सिलसिला विश्व की घटनाओं से जोड़ने में माहिर छोटकऊ की कौन कहे कि बाये हाथ से टेढ़े मेढ़े अक्षर लिखने

वाला यह व्यक्ति मुश्किल से दर्जा दो ही तो पास है? कौन जाने... सचमुच अगर कहीं वे कक्षा चार पास होते... तो गांव की यह विभूति किसी मिनिस्टर के दिमाग से कम न बैठती।❑

अज्जो

क्या सामान्य कही जाने वाली नारी का भी तेजोदीप्त रूप देखा है? जो खून को दूध में बदल सकती है, उसे प्रकृति ने ही श्रेष्ठ बनाया है।

'सब दिन जात न एक समान' जब सगे भी बेसगों जैसा व्यवहार करने लगते हैं तो राम से ही पाला पड़ता है। अपने प्रारब्ध पर विश्वास रखने वाली अज्जो के मैके के भाई-भतीजे पूछने आते भी तो यही कहतीं कि भगवान की कृपा से कोई तंगी नहीं। आजादी की रूखी-सुखी अच्छी..., अपने ढंग से जी तो सकेंगे।

अपनी नियमित लिपाई-पुताई और साफ-सफाई से क्वार्टर को चमन बना कर रखतीं। उनकी निगाह में छोटा वह होता है, जिसका दिल छोटा हो। कालोनी के मैदान में फुर्सत के छड़ों में सम वयस्क महिलाओं की टोली एकत्र

हो अपने मन की बात व्यक्त करतीं। गरीबी और विषाद से जीवन में बोलना-बतियाना तो एक आसरा है। उस जमाने में नाचना-गाना, साथ बैठना, सुख-दुख बांटना खूब होता था। आये दिन बुलौवों की भरमार रहती थी।

झाड़ू, पोछा, चकिया, सिल-लोहड़ा, खल्लड़-मूसल, सूप-चलनी, सुई-डोरा, चाकू-कैंची कृषि और ग्राम्य संस्कृति से साबका रखने वाले के दायें बायें रहती।

सृजनशील अज्जो के हाथ में रसायन है तभी तो उनके बनाए साधारण दाल चावल, रोटी सब्जी में ही अतिथि पूर्ण तृप्त हो जाता।

परिवार के बड़े बूढ़ों का आदर और छोटों का दुलार करने वाली अज्जो में आत्मीयता कूट-कूट कर भरी थी। पड़ोस के छोटे बड़े सभी उनका लिहाज करते। वे सबकी सगी थीं, पराया कोई नहीं। शऊर सिखाने में कोताही न करतीं, दिल की साफ थीं। मुंह से भले ही बक-झक कर लें, नाते रिश्ते में पहुंचते ही चादर उतार कढ़ाही में बैठ जाती। ढेर सारा आता मिनटों में गूंथ कर रख देतीं। पूरी बाह का सलूका, बिना चादर घर से बाहर न निकलतीं। स्वेटर बुनना, भांति भांति के व्यंजन बनाना, घर को सजाना संवारना, पंखा, गुड़िया, कथरी, टूटी चटाई को धोती की किनारी से मजबूत बनाने का टशन था। फटे-पुराने कपड़ों को भी सलीके से पहनना उनकी आदत में शुमार था। साबुन की ऐसी-तैसी, नन्हे-मुन्ने नाती पोतों को हाथ से रगड़-रगड़ कर नहलातीं। दूध दुहना, कण्डे-उपले तैयार करने में हेठी नहीं मानती। चारपाई पर दरी बिछाकर मेहमानों को अपने हाथ के बने पकवान खिलाने में रुचि रखतीं।

शिशु रोग विशेषज्ञ अज्जो की पोटली में चौभुजी, बारहसिंगा का टुकड़ा, वंश लोचन, अफीम, जड़ी-बूटी भरी रहती। अंजन, मंजन, बुकनू, आचार खुद तैयार करतीं। पिछली सदी के छठे सातवें दशक में दो रुपए रोज की पूंजी का कमाल दिखाने वाली अज्जो का अर्थशास्त्र विचित्र था। अजीबो गरीब नुस्खे उनकी जुबान पर रहते। रूई का फाहा घी में तलकर घाव में बांध देती। रसोई के मसाले हल्दी, अजवायन, राई, मेथी, हींग, शहद, नींबू, नमक, तेल, घी के प्रयोग से ज्वर, खांसी, जुकाम, पेट रोग आदि को चुटकी बजते समाप्त

कर देतीं। सच हो या झूठ, पुत्र और पुत्री के गरम मिजाज पर बचाव पक्ष की ओर से अज्जो का कथन था कि शैशवावस्था में दवा के रूप में इन्हें बाघ का मांस दिया गया था। बुलन्द हौसले की अज्जो ने रामायण अखंड पाठ के भण्डारे में पूड़ी के साथ दही-बुरा की वो धूम मचाई, उसकी चर्चा आज भी होती है। जीवन संघर्ष के बीच अज्जो का जुझारू व्यक्तित्व अपनी बात को स्पष्टता से कहने में अभ्यस्त था।

सोहर, पसनी, कनछेदन, जनेऊ, विवाह के गीतों में सोल्लस भाग लेने वाली अज्जो को दर्जनों ऐतिहासिक, सामाजिक कहानियां याद थीं, जिन्हें वे सुनतीं और 'जैसे उनके दिन बीते - वैसे सबके दिन बीतें' कहकर समाप्त करतीं।

यदि आम आदमी की बात करना सीमित दायरे में बंधना है तो उनकी उपेक्षा करना क्या है?

हम अपने दिक सूचक ध्रुवों की ओर से नजर फेर लेंगे तो फिर जायेंगे कहां?❑

अपनी पहचान खो रहे हैं हमारे गांव

आजादी के बाद जिस तीव्र गति से बदलाव हुआ है, उसमें हमारे गांव निरन्तर अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। देश की सांस्कृतिक जड़ें गांवों में ही समाई थीं। आत्मदान (अर्थात दूसरों को देना) की प्रवृत्ति वहीं से मिलती थी। गांव की प्राकृतिक छटा, मिट्टी का सोंधापन, प्रकृति से लेकर आदमी तक का खुलापन किसको नहीं मोह लेता था ?

कौन कहता है कि सड़कें नहीं बनीं, स्कूल अस्पताल नहीं खुले, नहरें नहीं निकलीं, पंपिंग सेट का जाल नहीं फैला? पर विकास की इस आड़ में गांव की आला तिलमिला उठी, इसका सौंदर्य, इसकी मिठास, इसकी गरिमा को घुन लग गया।

गुणात्मक दृष्टि से गांव पतन की ओर है। वहां एक शुष्कता और

निरवता व्याप्त है। गांव भीतर से खोखला हो उठा है। गांव की प्रतिष्ठा का मूल्य पूर्णतयः चुक गया है। ग्राम्य संस्कृति का रस निचुड़ गया है।

धरती के पूतों में गजब की हविश आ गई है, अथक थोप दी गई है। संतोष, सहिष्णुता, सच्चाई, रईसी, शांति और तृप्ति का पाठ पढ़ाने वालों के उत्तराधिकारी इस सीमा तक लुच्चई और गुंडई पर उतर आए हैं कि गांवों को सलाम करना पड़ रहा है। मिट्टी के घर, कच्ची पगडंडियां, बाग-बगीचे, खेत-खलिहान वाला क्षेत्र विशेष ही गांव है। मानसिक स्तर पर लोगों ने इस क्षेत्र का परित्याग कर दिया है। जो विवशतावश पड़े हैं, उनके मन में भी एक व्यापक उच्चाटन का भाव है।

चक्की के गीत, पनघट और अलाव की भीड़, चौपाल-चबूतरे की चहल-पहल, त्योहारों की मिठास, मेले ठेलों की रौनक और आस्था पर कहर छा गया है। यांत्रिकता ने सबको दबोच लिया है, अर्थ पिशाच अट्टहास कर रहा है। बड़े-बूढ़ों, मुखिया, चौधरी का लिहाज जाता रहा, पंच परमेश्वर फीके पड़ गए, आजादी की धुन में एकमात्र उच्छृंखलता का बोलबाला हो गया है। आदमियत लगातार घटती जा रही है।

पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, लोक-परलोक का रहा सहा अंकुश गायब हो गया है। अब रह गया है अपनी गोट बिठाने का नशा। किसी की पीड़ा-कचोट से किसी को कोई लेना-देना नहीं। एक कराह पर, एक गुहार पर इकट्ठा हो जाने वाला गांव अब इस धरती पर नहीं रह गया।

गांव के हर व्यक्ति की आत्मा में कोई अतृप्त, प्यासा, बेचैन प्रेत हाहाकार कर रहा है। जीवन स्तर पलंग और बिछौने की सजावट पर ज्यादा ध्यान देता है जबकि जीवन की गुणवत्ता गहरी नींद के सुख में है। भावनाओं की तृप्ति भावनाएं ही कर सकती हैं, पदार्थ नहीं।

वह मुक्त हास्य की फुलझडियां कहां जो उदास जीवन में सदा चेतना भरती रहती थीं। सच्चे संतोष और शांति की तुलना में दिखावट, दिशाहीन हलचल और आपाधापी वृद्धि पर है। स्नेह का स्थान ईर्ष्या लेती जा रही है।

प्रकृति का सहचर, नैसर्गिक मिठास से ओतप्रोत, आत्मीयता से विभोर ग्रामीण मानस अब दुर्लभ हो गया है। एक छूत सी फैली है, सब भय से त्रस्त हैं, कौन, कब, किसको झपट ले, रगड़ दे, मिटा दे? इसकी कोई कल्पना नहीं कर सकता। मन में मैल है, दिलों में काई जमा है, हंसते हैं, मुस्कराते हैं, पर इनके पीछे इनका घिनौना व्यापार छिपा है। आज देहाती जैसे बाहर से दिखते हैं, दरअसल वे वैसे हैं नहीं। वह तो उनका मुखौटा है। उसके पीछे के असली चेहरे को, बाह्य भद्रता के बहुरंगी आवरण तले छिपी छुद्रता को, हाथी के दांत की तरह चमकती दमकती संपन्नता और साधुता के पीछे की मलीनता को भी देखिए। ये बगुले पता नहीं कब, किस मछली का शिकार कर बैठें।

सौहार्द के अभाव में आज के गांव संघर्ष का स्थल बन गए हैं। वहां बढ़ा है जातिवाद, अशिक्षा, दरिद्रता, राजनीति, नेतागिरी, नौकरशाही, स्वार्थ और लूट। गांव के नेता तिकड़ बनने की होड़ में है और किसी बड़े आदमी या गुट का वरदहस्त अपने सिर पर बनाने को बेचैन है।

कैसे मान लें गांव में सब बुरा था। वहां भाईचारा था, पासिन दाई, पाण्डे काका, भुजइन मौसी, सितावा बुआ, दुग्गन चाचा, बदुल्ला ताऊ का नाता था। बड़ो को आदर, छोटों को प्यार मिलता था, व्यवहार में सफगोई थी, बात के धनी थे, पंचों पर विश्वास था, एक-दूसरे के सुख-दुःख में शामिल होने का रिवाज था। सच्ची सहानुभूति मिलती थी, आडम्बर नहीं था, बनावटी मुस्कान नहीं थी, एक-दूसरे की इज्जत का ख्याल था, अपनत्व था, स्नेह था, संकोच-लिहाज-मर्यादा का भान था। एक आस्था, विश्वास, सात्विकता की चादर ओढ़े गांव मस्ती से झूम पड़ता था। धरती और आसमान के बीच गांव सहयोग, सद्भावना, त्याग और जी तोड़ मेहनत से खुशहाल बने रहते।

बड़ी शक्ति थी उस गांव की मिट्टी में। क्या इसकी शक्ति और संवेदना की उपेक्षा कर, इसे हीं समझकर एक ताकतवर पीढ़ी उग सकती है? शहर से दुत्कारे जाकर गांव की ओर भागते हुए और गांव से ऊबकर शहर की ओर भागते हुए की मनोदशा को भांपना ही होगा।

शहर बहुत सस्ते ढंग से आकर्षण देता है और बड़े सतही ढंग पर आदमी की

रुचियों को बनाता है। शहरी संस्कृति केवल इच्छाएं बढ़ती है और गलत रास्ते पर ले जाकर छोड़ देती है। आज हम मूल्यहीनता के एक ऐसे अंधकारमय दौर में जीने को विवश हैं, जहां प्रकाश की कोई किरण दिखाई ही नहीं देती।

परंपराओं को मानकर हम अपनी पहचान को जीवित रखते हैं। आज आधुनिकता के नाम पर हम अपनी पहचान को भूलकर दूसरों की पहचान को लादना चाहते हैं। मानव मूल्य कितने विघटित हो गए हैं, इसका सबसे बड़ा कारण यही है कि हमने गांवों को, वहां की संस्कृति को छोड़ दिया है। आज का अंधा युग सुख प्राप्ति की होड़ में जीवन की शांति और आनंद को को बैठा है। भारतीय संस्कृति मूलतः कृषि संस्कृति है जिसकी पृष्ठभूमि सनातन ग्राम्य जीवन है। गांव की आध्यात्मिकता आनंदपूर्वक जीने और औरों को भी जीने देने के लिए प्रेरित करती है।

अभाव, दैन्य, पीड़ा, कचोट के बीच में भी जो ग्रामीण लोकगीतों, लोककथाओं, लोकनृत्यों के माध्यम से अपने को तरोताजा रखते थे, वे आज हताशा की जिंदगी जीने को विवश हैं। नगर की संस्कृति अब गांवों को आक्रांत करने लगी है। विसंगतियों को भोगते-भोगते आदमी का मानसिक तनाव बढ़ रहा है। अपने दुःख दर्द भुलाने के लिए, अपने वक्त को रंगीन बनाने के लिए, जीवन की थकान मिटाने के लिए गीत गाए जाते थे और आज ग्रामीण युवा नशे में धुत पड़े रहना ही अपना सौभाग्य मानता है।

कहां गई वो बाल लोरियां, कहां गई दादी-नानी की कहानियां, जिनकी ध्वनि में बालक सोए हैं। कहां गए वो बारहमासा, कजरी, बिरहा, सोहर, नहछू जिनके माधुर्य में स्त्री-पुरुष ने अपनी थकान मिटाई है और बूढ़ों ने मन बहलाया है, पाठकों ने थकावटें दूर की हैं, किसानों ने बड़े-बड़े खेत जोत हैं। ग्रामीणजन में जीने की कसावट की कमी नहीं रही। बेफिक्री और अलमस्ती युवाओं की शोभा मानी जाती थी। तन से पुष्ट, मन से उजले और स्वभाव से भोले युवक अब कहां हैं?

निश्चित, निश्छल आंदोलन में सब दुःखों को झेलना कोई ग्रामीणों से सीखे। गांव की शाम धुएं के अंबार में डब जाती है, चांदनी में नहा उठती है, वर्षा

की झड़ियां, सनसनाती रातों में, हवा से खेलते, जड़ों की गलन भरी रातों में ठिठुरते ग्रामीण तथा महुआ-मडुआ, कोदो, चोकर की रोटी और भाड़भात खा-खाकर गोरू के पीछे जंगल, झाड़, पहाड़, नदी-नाले में भटकने वाले युवा गजब की आस्था, निष्ठा संजोए रहते थे। स्त्रियों ने मेले में गोदना गुदवा लिए, औकात हुई तो लाख की चूड़ी और गिलट का कड़ा, चूड़ा पहन लिया।

डॉक्टरों की 'सुई' के आगे खरबिरइया दवाई को कोई नहीं पूछता। घाघ-भड्डरी के अनुभव फीके पड़ गए, पैदल पथिका तय करने का रिवाज खत्म हो गया। बस-अड्डे पर चाय-पान, सैलून की दुकानें होंगी ही, खुशामद, जी-हजूरी, तिकड़म, मतलब साधना, जरूरत पड़ने पर गधे को मामा कहना और काम निकल जाने पर अरीफ को भी साला बताना आम बात हो गई है।

आज का ग्रामीण अत्यंत निरीह और असुरक्षित है। एक ऐसे सूक्ष्म आतंक ने चारो ओर से उसे कस लिया है, जिससे वह निस्तेज होकर रह गया है। वे सारे सिद्धांत, परंपराएं, मूल्य जो मनुष्यों को सभ्य बनाते थे, आज धूल में मिल चुके हैं। संबंध बस पैसे का है। यही एक ऐसा सेतु है जो हमें परस्पर जोड़े हुए है। संवेदना या भावुकता के लिए उसके पास अवकाश नहीं।

आज का ग्रामीण मध्ययुगीन बोध से निकलकर एक औद्योगिक समाज के वातावरण को झेल रहा है। यह औद्योगिक वातावरण हमारे रिश्तों को, हमारे जीने के तौर तरीकों को और हमारी स्थितियों को नए ढंग से तराश रहा है।

व्यक्तिनिष्ठा इतनी बढ़ गई है कि सहिष्णुता, परहित भावना के लिए स्थान सीमित हो गया है। सेवा, सहयोग, सुधार, विकास ये शब्द अर्थ शून्य हो गए हैं। गांधीवाद जहां गांव की रुप-रक्षा में निष्ठावान रहा, वहां समाजवाद उसके रूपांतर अथवा नगरीकरण के लिए कृत संकल्प है।❑